समर्पण

क्रान्ति की शिखा, जनशक्ति की ज्वाला,

भारतीय नारीत्व की प्रज्ज्वलित शिखा

भारत की प्रधान मंत्री

श्रीमती इन्दिरा गांधी

के

कर कमलों में सप्रेम

समर्पित

कपिलदेव नारायणसिंह "सुहृद"

अपनी बात

'भारत-नेपाल पुस्तक के प्रणयन की प्रेरणा का सम्पूर्ण नेपाल के महाकवि श्री केदारमान 'व्यथित' को है क्योंकि उनसे मेरी मित्रता बढ़ी। उन्होंने मुझे नेपाल जाने को आमन्त्रित किया, मैं अपने मित्रों के साथ वहां गया एवं लोगों से परिचय प्राप्त किया जिससे अपनापन बढ़ा और घनिष्ठता बढ़ी।

भारत-नेपाल पर उपलब्ध पुस्तकों से जानकारी प्राप्त की। पर्यटन से लाभ उठाया। नेपाली जीवन को देखा-समझा। उस आधार पर ही यह पुस्तक रची। मेरे दो नवयुवक मित्र—श्री श्रीराम तिवारी और श्री अरविन्द कुमार 'अरविन्द' ने पहले से उसकी भूमिका लिखी और दूसरे ने मेरे सम्बन्ध में दो शब्द स्वेच्छापूर्वक लिखे। पुस्तक की पाण्डुलिपि भारत के इने-गिने व्याकरणाचार्यों में एक कविवर श्री लक्ष्मीनाराण शर्मा 'मुकुर' ने सँवारी जिस से सोने में सुगन्ध आने वाली लोकोक्ति चरितार्थ हो गई। ये सब मेरे घनिष्ट आत्मीय व्यक्ति हैं। मैं इन सब के जीवन की उन्नति की कामना करता हूं। ये लोग कहीं रहें, सुख से रहें यही हमारी चाह है।

फाल्गुन, शुक्ल—६,
सं० २०२६,
१३ मार्च, १९७०
पो० सुहृदनगर (मूंगेर)
बेगुसराय—

कपिलदेव नारायणसिंह "सुहृद"

इन्दिरा गांधी
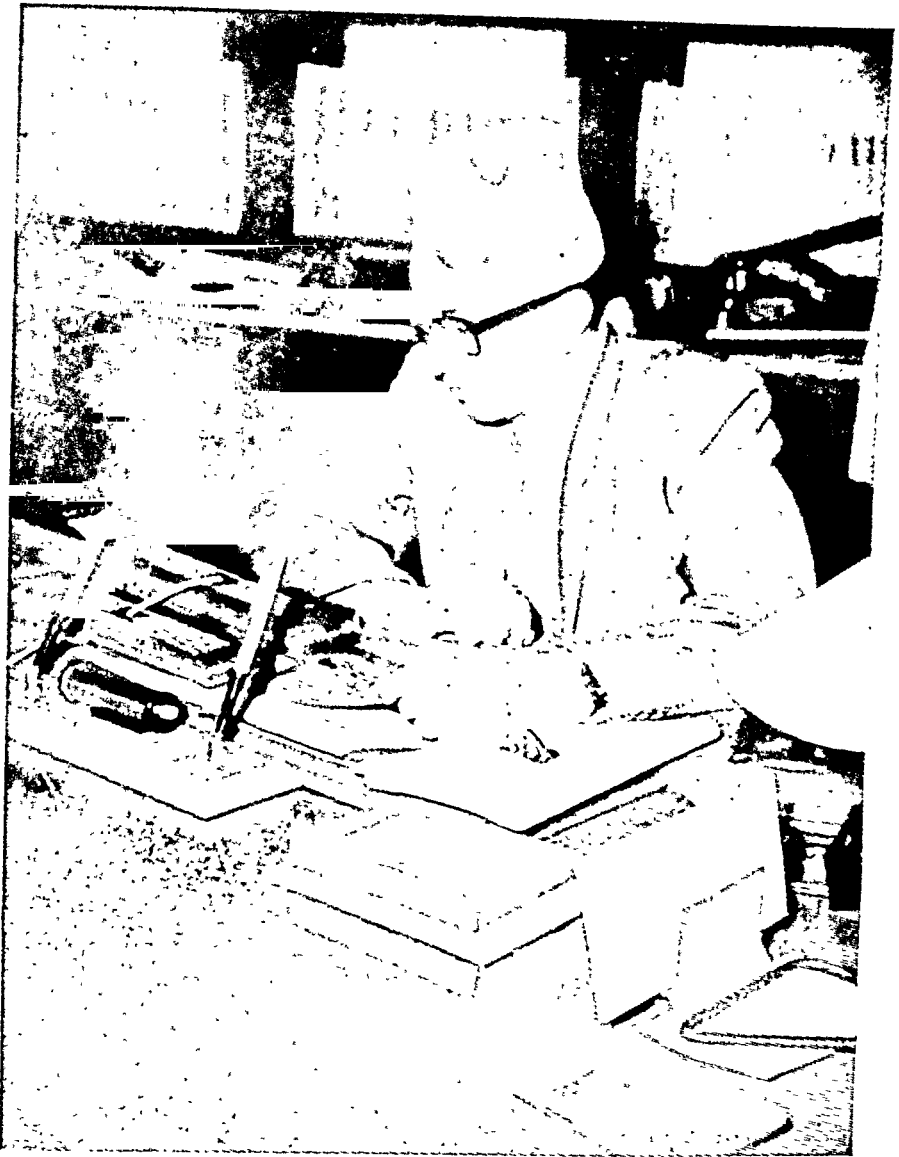
महाकवि महाराजाधिराज नेपाल नरेश

नेपाल नरेश अपने परिवार के साथ

नेपाल नरेश और भारत के महान् दार्शनिक डा० सर राधाकृष्णन्

महामहिम श्री राजबहादुरजी (राजदूत)
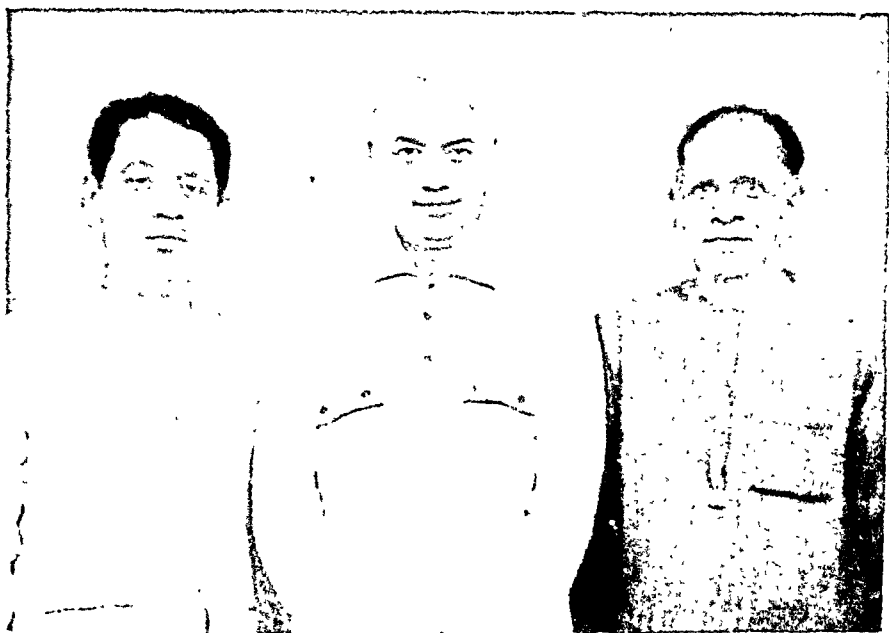
महाकवि व्यथितजी के साथ कविवर सुहृदजी और श्री इन्द्रमोहन प्रसाद

सुहृदजी और श्रीनेपाल नरेश
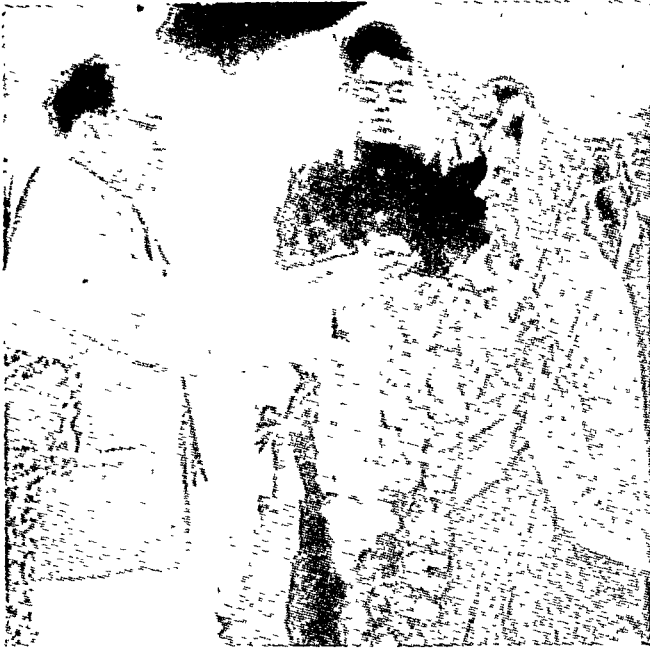
दिल्ली में—
श्रीमती इन्दिरा गांधी को, सम्मान में श्री रामदयाल
माला दे रहे हैं

लखनऊ हवाई अड्डा पर श्रीमती इन्दिरा गांवी के सम्मान में
राज्यपाल महामहिम रेडी उनकी धर्म पत्नी।
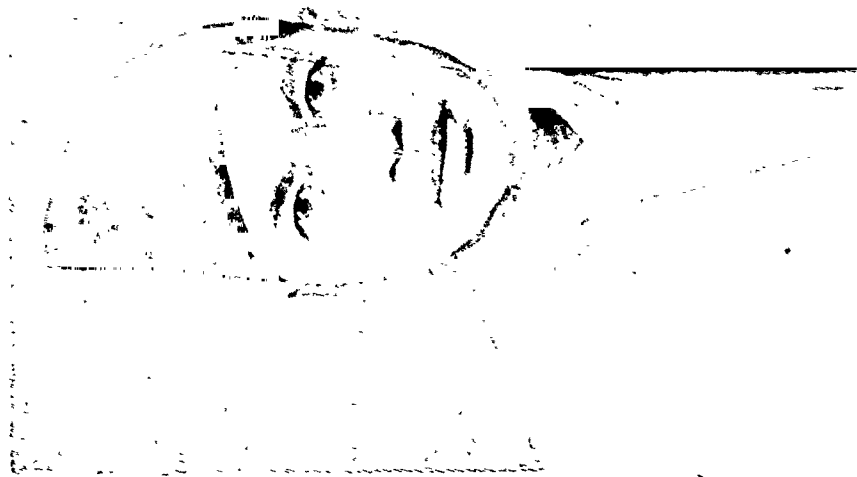
कविवर केदारमान "व्यथित"
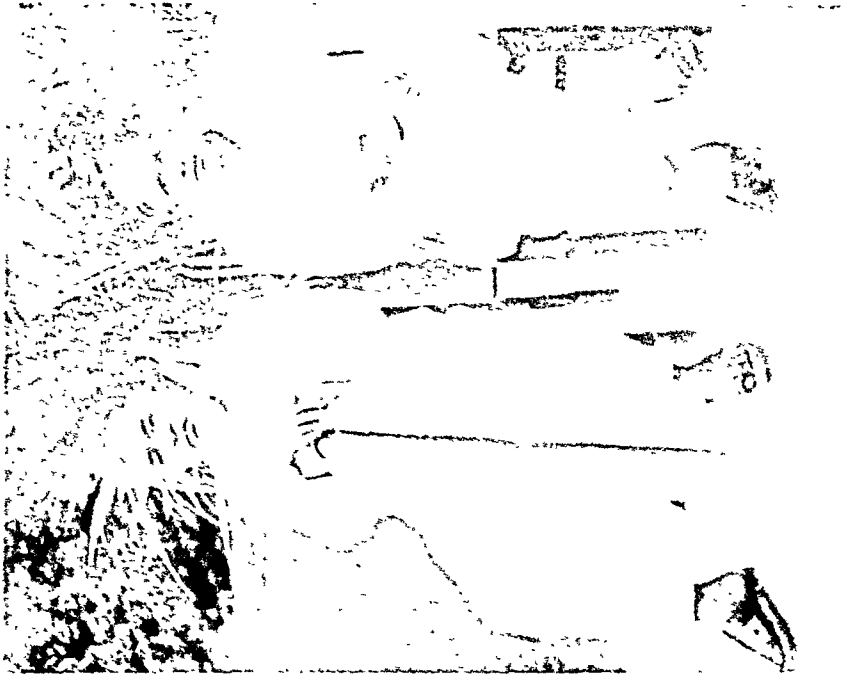
काठमांडो-नेपाल में
डा० लक्ष्मीनारायण सुधांशु और कविवर गुह्यजी

श्री सुहृद जी

ले० श्री अरविन्द कुमार 'अरविन्द', एम० काम०, बी० एल०

श्री कपिलदेव नारायण सिंह 'सुहृद' का जन्म भारत के बिहार प्रान्त के छपरा जिले के अन्तर्गत उस सिताब दियारा नामक ग्राम में फसली सन् १३०८ साल आश्विन, शुक्ल पक्ष, द्वितीया, सन् १६०० ई० को हुआ था जिसमें भारत के गौरव सर्वोदय नेता श्री जयप्रकाश नारायण का, कृषकों के महाकवि घाघराय और मुसलमानी जमाने के राज्यपाल श्री सिताबराय का जन्म हुआ था। अद्भुत है वह महिमावान् ग्राम जो जाह्नवी-सरयू के पुनीत संगम पर स्थित है जहाँ सलिल-सिकता का अपूर्व सम्मिलन है, शष्य-श्यामला वसुन्धरा पर पयः-प्लावन का आक्रमण है और है सृष्टि पर संहार की छाप। वहां जो कुछ है वह सुहृद जी के जीवन में अव्यक्त नहीं है। सुहृद जी प्रकृतित: स्वतन्त्र और निर्लेप व्यक्ति हैं। वे स्वार्थ के बन्धन को सदैव तोड़ते रहते हैं। उनका कथन है कि जल में नाव रहे तो कोई हानि नहीं पर नाव में जल नहीं रहना चाहिए। साधक संसार में रहे तो कोई हानि नहीं किन्तु साधक के भीतर संसार नहीं होना चाहिए।

सन्त सुधारक होते हैं और शासक भी। सन्त की भाषा है—सब सुखी हों और शासक की भाषा है—मेरी व्यवस्था में कोई दुःखी होगा ही क्यों? सन्त की भाषा है—सब दुष्कर्मों से हम बचें और शासक की भाषा है—दुष्कर्म दण्डनीय है। श्री सुहृद जी के पास सन्त और साधक दोनों की भाषाएँ एक साथ हैं। उनमें उच्चादर्श और सबल व्यवहार का संयम है। उनकी शक्ति है उन का सन्तुलन जिसमें कोमलता और दृढ़ता का मणि-कांचन-संयोग रहता है।

उनकी कविताओं पर ही आप मत रीझें। जीवन की परिस्थितियों के साथ भी उनका मिलान करें। वे कट्टर देश भक्त हैं, सत्याग्रही हैं और जाति से राजपूत हैं। राजपूतों का रक्त उनकी नस-नस में किस प्रकार दौड़ रहा है, वह उनकी इस कविता में देखें।

ये बालू के कण आज जले,
रजपूती राजस्थान जाग।

युग-युग का यह आवरण प्रबल,
हट जाय फटे यह वर्तमान।
सिकता के कण-कण पर चमकें,
वैभव की मणियां अति महान।
गूंजे जीवन का उच्च राग,
रजपूती राजस्थान जाग।
चित्तौर अंक में फिर ले ले,
गोरा-बादल से विपुल बाल।
इन शुष्क अस्थियों से भभकें,
बलि की लपटें अतिशय महान।
धधके धरती की कठिन आग,
रजपूती राजस्थान जाग।

वे जीना जानते हैं। उनमें अदम्य जिजीविषा है। उनमें आशा की ज्योति कभी निर्वासित नहीं होती। उनकी जीवन-गाथा बाधाओं पर साहस की विजय है। उनमें ऐसी अद्‌भुत क्षमता है कि कोई जिस कार्य से उनके पास जाता है वे उसे तत्क्षण समझ जाते हैं और तदनुसार ही उसके साथ व्यवहार करते हैं। उनकी मर्म-भेदिनी दृष्टि से किसी के लिए बच निकलना या कुछ छिपाकर रखना संभव नहीं है।

वे कभी-कभी अपने पास आए हुए सज्जन के हृदय की बात उनके बोलने के पहले ही कह देते हैं।

वार्त्तालाप के क्रम में हम लोग उन्हें बराबर कहा करते हैं—"बाबा, हर आदमी आपके सदृश ही भाग्यशाली और सुखी हो तो महात्मा गांधी का स्वप्न चरितार्थ होगा।" इस पर वे बात की बात में कह बैठते हैं—जीवन अपने कर्मों के वशीभूत होकर ही सुख दुःख का भागी होता है। इसके साथ वे तुलसीदास की यह पंक्ति कह देते हैं—'जीव कर्म बस सुख दुःख भागी।' इसके बाद वे कहने लगते हैं कि—'मैं सुखी इसलिए हूं चूंकि मैं विगत जीवन या अतीत काल को नहीं मानता, आज और आगामी कल को मानता हूं। इसके साथ ही साथ मेरे पास जितना जो कुछ है उससे ही मैं सन्तुष्ट रहता हूं। किसी वस्तु के लिए मेरे दिल में 'हाय' नहीं है। यह सब ईश्वरीय कृपा है। बाप-दादा द्वारा अर्जित धन को मैं स्वधन नहीं मानता लेकिन यह मानता हूं—

'वाढ़हि पूत पिता के धर्म्मा ।

अपने पूर्वजों के पुण्य-प्रताप से मैं इतना फूलता-फलता रहता हूं ।'

जिस प्रकार सलिल के मध्य में स्थित **किंजल्क सलिलासक्त** नहीं होता उसी प्रकार सुहृद जी संसार-सागर के भँवर चक्र में रहते हुए भी उस में आसक्त नहीं हो पाते। संसार उनके लिए एक क्रीड़ा-क्षेत्र है और एक खिलाड़ी की तरह ही वे इसमें जीते हैं

वे सर्वकल्याण में स्व-कल्याण मानते हैं। इसलिए वे अपकार करने वालों का भी उपकार करते हैं। ऐसा है उनका अद्‌भुत जीवनदर्शन, ऐसी है उनकी साधना-दृष्टि और ऐसा है उनका आत्म दृष्टिकोण।

प्रत्येक व्यक्ति की अपनी रुचियाँ होती हैं, अपने दृष्टिकोण होते हैं और अपने विचार होते हैं जिनके अनुसार वह स्थान विशेष को देखता है, उसके बारे में सुनता है और प्रभावित होता है। राजनीतिज्ञ अपनी दृष्टि से देखता है और साहित्यकार अपनी दृष्टि से सुहृद जी राजनीतिक और साहित्यिक दोनों दृष्टियों से देखते हैं क्योंकि राजनीति और साहित्य दोनों में उनका समान प्रवेश है।

भारत के हर क्षेत्र के हर फिरके के लोगों से उनका परिचय है। यही कारण था, भारत सरकार ने १९४६ ई० के दिसम्बर में उनके नाम पर बेगूसराय रेलवे स्टेशन से सटे उत्तर सुहृदनगर नामक डाक घर खोलने की आज्ञा दे दी। उन्होंने एक विशाल भवन बनवाकर इस कार्य के लिए भारत सरकार को सौंप दिया। उसके बगल में एक बहुत बड़ी चहार दिवारी के अन्दर एक सुन्दर तिमंजिला भवन है जिसमें वे रहते हैं। ईंट-पत्थरों से निर्मित यह भवन यही कहता है कि मैं और भवनों से कुछ और हूँ, मुझे महल के रूप में मत देखिए, मेरे कण-कण में कुटीरी पावनता है, चप्पे-चप्पे पर त्याग तपस्या की मुहर नजर बन्द है और **आपादमस्तक** साधना और **अजेयता** की छाप है। यह भवन मेरे और मेरे अग्रज के नाम से है। अतिथियों के लिए इसमें सारी व्यवस्थाएँ हैं और रहेंगी। श्री सुहृद जी जब तक इस असार संसार में रहेंगे, इसमें रहेंगे जैसे रहते आये हैं और उनके अतिथि भी। मेरे दोनों भ्राताओं की यह इच्छा है कि यह भवन सर्वत्र अतिथि-भवन बना रहे।

जिस कार्य की सिद्धि के लिए अन्य व्यक्ति हार मान लेते हैं उसके लिए आप सुहृद जी को प्रस्तुत पायेंगे। ईश्वर पर उन्हें अखण्ड विश्वास है। वे

सर्वदा कहते हैं कि करना न करना यह सब ईश्वर के हाथ में है। पैसों की बदौलत आप उनकी खिदमत के हकदार नहीं हो सकते पर उनका मित्र बनकर उनकी जितनी सेवा चाहें आप ले सकते हैं। सेवा की अपूर्व क्षमता उनमें है। जिसका उत्तरदायित्व वे एक बार ग्रहण करेंगे उसे पूरा करके ही छोड़ेंगे। लेकिन जिस कार्य में उनकी चित्त-वृत्तियां नहीं रमतीं वह चाहे जितना भी महत्त्वपूर्ण हो उनसे न हो सकेगा। उनकी सहनशीलता अनुपम है। आप उन की बुराई करें वे आपकी भलाई ही करेंगे अन्यथा बुराई न करेंगे। पर अनिष्ट चिन्तन उनकी प्रकृति में नहीं है लेकिन दूसरों का दंभ वे देख नहीं सकते और चूर कर ही दम लेंगे।

उनका व्यक्तित्व उलझनों से भरा है। इसलिए उसका सम्यक् मूल्यांकन नहीं हो पाता। कोई उन्हें दंभी समझता है, कोई हल्का, कोई मीठा और मनोहर। लेकिन अधिकतर व्यक्ति उन्हें निःस्वार्थ मानते हैं। जब वे नहीं रहेंगे, मेरा ख्याल है, उनके आलोचक उनकी प्रशंसा ही करेंगे। इसका कारण यह है कि जिन पहलुओं से लोग उनसे अप्रसन्न होते हैं वे महज सतही पहलू हैं और सतह के नीचे जो बातें हैं वे कोमल और पवित्र हैं। उस कोमलता और पवित्रता के लिए हम लोग उनका आदर करते हैं।

वे दरिद्रों, रोगियों और दुःखियों की सेवा करना अपना धर्म मानते हैं। वे किसी के मन पर अपना विचार लादना पसन्द नहीं करते, ठीक, इसके विपरीत किसी का अनुचर होना उन्हें स्वीकार नहीं है। बात वे सबकी सुनते हैं पर काम अपनी तबीयत के अनुसार ही करते हैं।

कोई कवि हो या लेखक, नेता हो या कार्यकर्त्ता, अधिकारी हो या कर्मचारी, गरीब हो या अमीर वह एक बार सुहृद जी से मिल कर सर्वदा के लिए मिल जाता है। उनकी स्मृति-शक्ति बड़ी तीक्ष्ण है—एक बार जिससे परिचय होता है वह आजीवन परिचित ही रहेगा। उनकी सेवाएँ परिचित-अपरिचित सब के लिए सदा उपलब्ध रहती हैं। इस सत्य को प्रो० नवल ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—

> "आज भले संसार तुम्हारी, अमर महत्ता जान न पाये,
> आज भले जगती इन आँखों से तुमको पहचान न पाये।
> किन्तु समय वह दूर नहीं जब सभी पीढ़ियां जय बोलेंगी,
> सभी तुम्हारे कृति-ग्रन्थों की एक बार गाँठें खोलेंगी।"

ता० २७-११-६९
पो० बेगूसराय (मुंगेर)

अरविन्दकुमार 'अरविन्द'

भारत-नेपाल : दोस्ती का स्थायी पुल

(ले० कविवर श्री श्रीराम तिवारी—एम० ए०)

सुहृदजी की "भारत-नेपाल" किताव दो देशों के वीच एक "पुल" की तरह है। भारत और नेपाल भूगोल के दो धब्बे नहीं, निखालिश मित्रता, सांस्कृतिक परम्परा एवं सनातन जातीय इकाई के प्रतीक हैं जो समय, स्थान, गति की तरह इतिहास की धारा और आन्तरिकता का एक आयाम हैं। इसी पवित्र और पूर्ण आयाम के प्रति "भारत-नेपाल" अर्पित है।

"मैं सुहृद जी के" "ग्राफिक-कमाल" का कायल हूँ। छोटा विस्तार, छोटे लोग, छोटी घटनाएँ, साफ और सीधे प्रवाह में इस तरह से इनकी भाषा और पकड़ में समाई हुई हैं कि एक पाठक के लिए यह जानना सुखर होता है कि सुहृद जी की रचना-प्रक्रिया वहुत से समान धर्मी लेखकों की तरह सपाट बयानी नहीं है वल्कि वह एक ठोस, वुनियादी, दृढ़ मानवीय बोध और मूल्याँकन की "ग्राफिक" कोशिश है जो चढ़ती उतरती रहती है और एक पूरा आधारफलक दे देती है। मेरी यह वात जिनके पल्ले नहीं पड़े वे सीधे "भारत नेपाल" का पहला अंश पढ़ लें। एक अवाध और कहीं से भी अनुप्रेरित नहीं दिखने वाली मानवीय सहजता के उसमें दर्शन नहीं हो जावें तो मेरी बात मात खा जायेगी और मैं इसे सहर्ष वापिस ले लूंगा।

'भारत-नेपाल" का विषय केवल मात्र नेपाल के प्रति एक भारतीय की जिज्ञासा का "अलबम" नहीं है वल्कि एक ही "प्लेन" पर नेपाली जन-जीवन के लिये भारतीय महत्वपूर्ण क्षेत्रों की जानकारी देता भी है। सम्बन्धों में "एकांगिता" को समाप्त करने की जैसी अच्छी समझ और प्रेरणा इस पुस्तक से मिलती है मैं सुहृद जी के आर्ष और महत्तम विवेक और संवेदनशीलता के प्रति विनत हूँ। इस पुस्तक में अछूते लोग और अछूती वातें हैं। एक योजना से व्यवस्थित शीर्षकों में वातों को सजाकर समझने और पढ़ने के जो प्रेमीजन होंगे उनको इसकी अनौपचारिकत से निराशा होगी। इसमें एक यात्रा-प्रिय, प्रकृति-प्रिय एवं संस्कृति-प्रिय उत्फुल लेखक की डायरी में आए लोगों, कवियों, लेखकों, जगहों, कारों, होटलों, राहगीरों, नरेशों, राज्यपालों एवं राजपूतों के

छोटे और मधुर प्रभाव-चित्र हैं जो एकबद्ध होकर छोटे-छोटे सम्बन्ध चित्रों के रूप में गति प्राप्त कर "रील" की तरह गुजर जाते हैं। सुहृद जी की ग्राफिक-रचना प्रक्रिया की चर्चा मैं शुरू में कर चुका हूँ। इनकी रचना-प्रक्रिया की यह पुस्तक नवीनतम शीर्ष-देन है।

जो लोग सुहृद जी को जानते हैं उन्हें कतई पता होगा कि नेपाल के प्रति उनकी भावना क्या है—किस तरह उनकी हर वार्ता में "नेपाल" भारत देश के लिए एक "सहोदर" भाई का दर्जा रखता है। नेपाल-यात्रा का सुयोग पाकर भला सुहृद जी नेपाल और नेपाल नरेश की प्रकाम्य काव्य प्रतिभा पर नहीं लिखते तो आश्चर्य ही होता। बेगूसराय के सुहृद नगर से लेकर काठ-माण्डू की यात्रा के दौरान जो लोग और जो भावनात्मक क्षेत्र उनके दिमाग में रहे उन्हें उन्होंने तुरन्त एक पुस्तक का विषय बनाकर "भारत-नेपाल" मैत्री और सहोदरता का कितना बड़ा कार्य किया है इसे दोनों देशों के सामान्य जन के हृदय का उद्गार बतायेगा जो इस पुस्तक के वाचन के बाद हठात् अभि-व्यक्त हो जाएगा। मैं इस किताब को इसी संदर्भ के नाम प्रस्तावित करता हूं।

मेरे इस प्रस्ताव में "भारत-नेपाल" की "एकात्म" शक्ति और इतिहास परम्परा पर विचार की शुरुआत का एक हल्का और प्रसन्न संकेत भी है। यह संकेत मेरा नहीं सुहृद जी की नेपाल और भारत की एकजुट चेतना का है जो केवल सुहृद जी की नहीं है—दोनों देशों के असंख्य लोगों की है। भारत-नेपाल के कृती और मधुर सम्बन्धों की लय में यह पुस्तक जिस प्रकार से शामिल हो रही है उस पर हमको, हमारे देश हर पाठक और दृष्टा को एक सहोदर भाई के "जन्मोत्सव" का सुख मिलेगा नये विचारणीय, जुगुप्सा मुक्त भाईचारे और बराबरी के सम्बन्धों के जन्मोत्सव का। सुहृद जी के सहयात्री श्री विष्णु देव नारायण अग्रवाल, बेगूसराय आदि साधुवाद के पात्र हैं जिन्होंने इस महत्वपूर्ण, ऐतिहासिक यात्रा को सफल और मनोविनोदपूर्ण बनाया।

—श्रीराम तिवारी

सुहृदनगर
बेगूसराय
तिथि—१६।३।७०

भारत-नेपाल

विषयानुक्रमणिका

संस्मरण

नेपाल के भूतपूर्व मन्त्री—अब कुलपति महाकवि केदारमान 'व्यथित' से फरवरी १९६८ ई० में निराला-परिषद् के उत्सव में, जिसका उद्घाटन डा० लक्ष्मी नारायण 'सुधांशु'' ने किया था फिर भेंट हुई। 'व्यथित' जी ने 'सुधांशु' जी को नेपाल आने को निमंत्रित किया जिसके उत्तरस्वरूप 'सुधांशु' जी ने विनम्रता पूर्वक कहा—'अभी छुट्टी नहीं है। सुहृद जी को मैं समय वता दूँगा।'' वार्त्तालाप के क्रम में 'व्यथित' जी ने कहा—''नेपाल नरेश के शुभ जन्मोत्सव पर मैं नेपाल साहित्य संस्थान का उत्सव करूंगा। उसी अवसर पर आप आने का कष्ट करेंगे।'' वातें वहीं समाप्त हो गई। उसके बाद महाकवि 'व्यथित' जी से कभी विराट नगर में और कभी सुहृद नगर में कई वार भेंट हुई।

अप्रैल, १९६८ ई० में दो पत्र एक दो दिन आगे-पीछे मिले—पहला था। भारतीय राजदूतावास, नेपाल के डा० इन्दुशेखर (साँस्कृतिक सहचरी) का और दूसरा था नेपाली साहित्य संस्थान के सहसचिव श्री चित्तरंजन नेपाली का जिस पर दिनांक १२.४.६८ अंकित था। इन पत्रों में डा० 'सुधांशु' या अन्य किसी मित्र के नाम का उल्लेख नहीं था। मैंने पत्रोत्तर में विलम्ब किया क्योंकि मैं स्वर्ग में भी अकेला जाना पसन्द नहीं करता। दो-तीन दिनों के वाद डा० 'सुधांशु' का पत्र मिला। मैंने नेपाली साहित्य संस्थान के सहसचिव और डा० इन्दुशेखर जी को अपनी स्वीकृति भेज दी।

मैं शहर और मैदान का रहने वाला हूँ। लेकिन वन और पर्वत के प्रति मेरे मन में तीव्र खिचाव रहा है। इससे नेपाल-यात्रा की कल्पना ने मुझमें एक अनिवर्चनीय आनन्दोल्लास भर दिया।

विगत ११ जून, १९६८ ई० को सुहृदनगर से श्री अरविन्द कुमार 'अरविन्द,' श्री गणेश वहादुरसिंह और श्री विष्णुदेव नारायण के साथ मैंने पटना प्रस्थान किया। रास्ते में श्री रामदयाल वावू मिले जो अपनी गाड़ी से दीपकुमार को लेकर पटना जा रहे थे। उनके साथ श्री सरयू प्रसाद सिंह मन्त्री विहार राज्य श्री प्रेमकुमार सिंह आदि भी थे। दीपकुमार को मैंने अपनी गाड़ी में विठा लिया। हम लोग सकुशल पटना पहुँचे। सभी लोग अपने-अपने काम में लग गये। मैं नेपाल एयर लाइन के ऑफिस में गया।

वहां श्री विक्रम प्रसाद नेपाल और श्री मोहन खन्ना से बातें कीं। संध्या समय डा० 'सुधांशु' जी के यहां गया। उनसे बातें हुईं। विष्णुदेव बाबू ने कई दिन पहले छह टिकट खरीद लिये थे। १२ जून, १९६८ के प्रभात काल में मैं 'अरविन्द' गणेश और विष्णुदेव बाबू के साथ डा० 'सुधांशु' से मिलते हुए हवाई जहाज के अड्डे पर पहुँचा। कस्टम के जिम्मे सब सामान रख दिये। रामदयाल बाबू दीपकुमार को लेकर आये। 'सुधांशु' जी भी समय पर आ गये। उन्हें विदा करने को हजारों आदमी आये। उनके साथ-साथ मेरे गले में भी फूल मालाएँ पड़ने लगीं। उनके साथ-साथ मेरा जयकार भी होने लगा। ठीक ही है। फूलों के साथ-साथ कांटे भी शिव मस्तक पर चढ़ जाते हैं। इसे ही संगति का फल कहते हैं।

हमारा जहाज एक घण्टा देर आया। खुलते-खुलते बहुत देर हो गयी। खुलने के कुछ पहले हम लोग जहाज में प्रविष्ट हुए। मैं डा० 'सुधांशु' के साथ बैठा। अरविन्द और गणेश बहादुरसिंह एक साथ बैठे। विष्णुदेव बाबू और दीपकुमार एक साथ बैठे। मैं सबसे पीछे बैठा था। मेरी बगल में जहाज से नीचे उतरने की सीढ़ी थी। दरवाजा बन्द हुआ। जहाज उड़ा। पहले पहल जहाज पर चढ़ने वालों का जी मिचलाने लगा। हम लोग जिस जहाज से सफर कर रहे थे वह नेपाल एयर लाइन का था। उसमें शायद पैंतीस व्यक्तियों के बैठने की जगह थी।

हम ज्यों ही नेपाल के पास पहुँचे, मेरे हृदय में खुशी की लहर उठी। नैसर्गिक सौन्दर्य मनमोहक था। कहीं-कहीं पहाड़ों से निकल कर निर्झर प्रवाहित हो रहे थे। पहाड़ियां जंगलों से भरी थीं। कहीं कहीं हरे-हरे खेत और छोटे-छोटे गांव थे।

पहाड़ों के पास पहुँच कर जहाज बहुत ऊँचाई पर उड़ने लगा। प्राकृतिक दृश्य, जो नीचे से बहुत सुन्दर दिखते हैं, ऊपर से कम सुन्दर दिखते हैं लेकिन हम लोगों ने जो दृश्य देखे, सब बहुत सुन्दर थे। विभिन्न पहाड़ों की बहुरूपता हमारे मन में नीरसता उत्पन्न नहीं करती थी। जहाज में एक लड़की हल्का भोजन मेरे सामने लाई। मैंने उसे ग्रहण नहीं किया। वह पुनः औरों के पास गयी और लौट कर मुझे पूछने लगी। उसने सभी खाद्य-पदार्थों के नाम बताये। उसके आग्रह से मैंने एक कप चाय मांगी। जिसे वह ले आई। मैंने चाय लेते हुए पूछा—'आपका नाम क्या है ?' उसने कहा—'जान की।' इससे जानकी माता का स्मरण हो आया। मैंने सोचा—मैं जानकी माता के देश में जा रहा हूं थोड़ी देर के बाद वह लड़की आई और कहा—'काठमाण्डू

होते वर्षा होने लगी। जब जहाज खड़ा हुआ तब वहाँ के व्यवस्थापक एक बहुत बड़ा स्टेशन वैगन गाड़ी लेकर जहाज के पास आये। बेगूसराय निवासी और हम लोगों के मित्र राम सागर बाबू भी हम लोगों के स्वागतार्थ आये थे। मेरी दृष्टि सर्वप्रथम उन्हीं पर पड़ी। उन के बाद महाकवि 'व्यथित' जी, श्री भीमनाथ तिवारी और प्रो० मल्ल जी पर मेरी दृष्टि गई। हम लोग मोटर में सवार हुए।

आफिस के पास पहले डा० 'सुधांशु' मोटर से उतरे। उसके बाद और लोगों के साथ उतर कर मैं बैठने वाले कमरे में चला गया। मैं सोफासेट पर बैठ गया। इसके बाद 'अरविन्द' और गणेश बहादुरसिंह आये। मैंने 'अरविन्द' से पूछा—'दीपकुमार कहां है? तब 'अरविन्द' और 'गणेश' उसे खोजने को बाहर गये। माला पहनाने वालों ने खोजते-खोजते मुझे भी खोजा और मालाओं से ढंक दिया। कविवर 'व्यथित' जी आदि कुछ देर बैठे। वर्षा खत्म हो गयी। रामसागर बाबू, विष्णुदेव बाबू, अरविन्द, दीप कुमार और गणेश को अपने यहां ठहराने को ले गये। उन्होंने मुझे और डा० 'सुधांशु' को भी चलने का आग्रह किया किन्तु इच्छा रहते हुए भी हम लोग उनके यहां ठहर नहीं सके।

हम दोनों व्यक्तियों को एक बहुत बड़े होटल में ठहराया गया। जिस समय हम लोग होटल में पहुँचे, मैं तनिक अचरज से भर गया क्योंकि मैंने जितने होटल देखे थे, यह होटल उन सब से निराला था। उसका दरवाजा बहुत सुन्दर था। उसका बाहरी रूप आकर्षक फल-पत्तियों से सज्जित था। मैदान ऐसा मालूम पड़ता था मानों किसी महाराजा के महल का अंग हो। होटल के बारे में मेरी जो कल्पना थी उससे उसका तनिक भी सामञ्जस्य नहीं था। हम लोगों का कमरा साफ-सुथरा, आरामदेह और सुसज्जित था। गर्म और ठंडे जल की उसमें व्यवस्था भी थी। बाद में ज्ञात हुआ कि वह किसी राणा का मकान था। अब उसे होटल बना दिया गया है। वह तीन चार मंजिलों वाला मकान था जिसमें कम से कम चार-पाँच सौ कमरे होंगे। भोजनालय को बार बार देखने पर भी मन नहीं अघाता था। व्यवस्थापक नेपाली थे। होटल का नाम था—शंकर होटल। एक कमरे का किराया ८५ रुपये प्रतिदिन था जिसमें भोजन व्यय सम्मिलित नहीं था। वह होटल लाजिमपा मुहल्ले में था। होटल में मिलने वाले बहुत नेपाली भाई आये। वहीं श्री पशुप्रधान से भेंट हुई।

कविवर श्री व्यथित जी से ज्ञात हुआ कि श्री व्रजकिशोर 'नारायण' अपने कई साथियों के साथ आये हैं। मैंने उन्हें पूछा—'वे लोग कहाँ ठहरे हैं?' उन्होंने किसी होटल का नाम बताया। मैंने उन्हें कहा—'हम लोग भी उन्हीं के साथ ठहरते तो अच्छा होता। इतने महंगे होटल में ठहरना मुझे अच्छा नहीं लगता।' अन्य लोगों ने कहा—'वहां जगह की कमी है।' तब मैं चुप हो गया। हम लोगों ने भोजन किया।

आज नेपाल नरेश श्री ५ महेन्द्र वीर विक्रम शाह जी का शुभ जन्मोत्सव है। इस शुभ अवसर पर उनके सम्मान में बारह तोपों की सलामी दगेगी। साढ़े बारह बजे मोटर पहुंची। हम लोग उस मैदान में पहुंचे जिसमें नरेश को सलामी दी जाती। वहां एक पक्का बहुत सुन्दर विशाल मंच बना हुआ था। हम लोग मंच पर गये। सभी लोगों से परिचय कराया गया। वहीं महामहिम श्री राजबहादुर जी और डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन' से भेंट हुई। 'सुमन' जी ने वहाँ अफसर से लेकर मिनिस्टर तक और नेता से लेकर स्वयं-सेवक तक से परिचय कराया। उनका परिचय हर तबके के व्यक्तियों से था। इतना प्रभावशाली व्यक्तित्व बहुत कम नजर आता है।

हम उत्सव की समाप्ति पर मंच से नीचे उतरे। भीड़ की अधिकता से मोटर तक जाना कठिन हो गया। किसी तरह से हम मोटर तक पहुंचे। होटल में जाकर हाथ मुंह धोये। चाय पी कविवर 'व्यथित' आये। हम लोग फिर पांच बजे शीतल निवास पहुंचे जिसमें भारत के भूतपूर्व राजदूत महामहिम सर चन्द्रेश्वर प्रसाद नारायण सिंह रहते थे। उसमें एक बहुत बड़ी पार्टी थी। वहीं श्री नारायण जी, श्री रूद्र जी आदि से भेंट हुई। व्यवस्था बहुत अच्छी थी। इन्द्र भगवान् भी आशीर्वाद देने को आ गये। इसलिए सारा इन्तजाम भीतर में हुआ। वही लोगों ने महारानी रत्ना जी से परिचय कराया। सभी देशों के दूतावास (जो नेपाल में हैं) के पदाधिकारियों के सिवा हर तबके के व्यक्ति पार्टी में आमन्त्रित थे। कविवर 'व्यथित' जी ने हमारा परिचय नेपाल नरेश से कराया जिनकी ४९वीं जन्म जयन्ती के शुभ अवसर पर हम लोग पार्टी में पधारे। उनके जन्म दिवस पर मैंने एक कविता लिखी थी जिसे 'उत्तर विहार' के सम्पादक आदरणीय भाई श्री राम रीझन रसूलपुरी ने उनके चित्र के साथ प्रकाशित किया था। मैंने कविता महाकवि नरेश को भेंट कर दी जिसकी कुछ पंक्तियाँ यों हैं—

युग-युग नेपाल-नरेश जियो,
नेपाल रहे गौरवशाली ॥

तुम जियो, वीर, पृथ्वी त्रिभुवन की आतमा के वरदान जियो,
तुम जियो, हिमालय की धरती के कर्म कुशल दिनमान जियो।
हे चन्द्रगुप्त के शौर्य्य जियो, हे बुद्धदेव के ज्ञान जियो,
नेता, सेवक, साथी जनता के, गति-मति-आशा-प्राण जियो।
तुम जियो नरेशों के नरेश, नेपाल भूमि के वनमाली।
युग-युग नेपाल-नरेश जियो, नेपाल रहे गौरवशाली।
तुम जियो, नया नेपाल अभी निर्माण मांगता है तुम से,
अभिशप्त युगों का ग्राम-जगत वरदान मांगता है तुम से।
अनुभव के धनी जियो, जन-गण आह्वान मांगता है तुम से,
तुम जियो विरोधी भी अपना कल्याण मांगता है तुम से।
तुम जियो, क्षमा के पिता, लिए अपनी मुस्कानों की लाली,
युग-युग नेपाल-नरेश जियो, नेपाल रहे गौरवशाली।
हे अमर महाकवि, पावनता-सुन्दरता के शृंगार जियो,
त्रिभुवन की ज्योति, महालक्ष्मी रत्ना के प्राणाधार जियो।
भारत-नेपाल-मित्रता के पालक-पोपक आधार जियो,
हे वीरों के वीरत्व जियो, प्रेमी भक्तों के प्यार जियो।
हे निश्चलता के सूर्य जियो, मिट जाये कपट निशाकाली,
युग-युग नेपाल-नरेश जियो, नेपाल रहे गौरवशाली।

[पो०—सुहृदनगर, विहार, भारत]

कविता के वारे में कविवर नेपाल-नरेश जी से वातें हुई। उत्सव के वाद हम लोग आठ वजे होटल गये। चाय पी। फिर उसी मोटर से हम लोग (डॉ० 'सुधांशु' और मुझे) दो वजे रात में शंकर होटल पहुंचाया और लौट गये।

विष्णुदेव वा अरविन्द, गणेश, दीपू कुमार और अरविन्द को राम सागर वावू ने अपनी गाड़ी दे दी थी। वे दिन भर घूमते रहते थे। वहीं विहार के नेता तथा मंत्री श्री रामचरित्र सिंह के पौत्र श्री सूर्य शेखर से भेंट हुई। उन्होंने वड़े आदर से मुझे प्रणाम किया। मैंने उनका परिचय डा० 'सुधांशु' से कराया।

१३ जून, १९६८ ई० को मैं और डा० 'सुधांशु' भारतीय दूतावास में गये। वहाँ महामहिम श्री राजवहादुर जी से डेढ़ घण्टों तक देश-विदेश सम्वन्धी वातें हुई। वे वहुत सरस, कोमल और भावुक हैं और आपादमस्तक

शील की मूर्ति। वार्तालाप के बीच-बीच में चाय का दौर भी चलता रहा। इसके बाद हम लोग बाबा पशुपतिनाथ के दर्शन को चले। हमारी मनः कामना पूर्ण हुई। नौनाथ में एक पशुपतिनाथ भी हैं जिनकी स्थापना शंकराचार्य ने की थी। देव-दर्शन के उपरान्त हम लोग रामसागर बाबू के यहां गये। ज्ञात हुआ कि वे लोग भी बाहर गये हैं। तब डा० 'सुधांशु' होटल गये और मैं बाजार की ओर गया। बाजार में दो-एक व्यक्ति से भेंट कर मैं भी होटल चला आया। हम लोगों को १६ जून ६८ तक काठमाण्डू में ठहरना था। मैंने डा० 'सुधांशु' जी से कहा—'कल सुबह (१४ जून ६८) में जहाज से चलिये। कविवर व्यथित जी आये। मैंने अपनी इच्छा उनसे व्यक्त की। वे मेरी बातें सुन चुप हो गये। मेरे प्रबल आग्रह से उन्होंने हम दोनों को जाने की अनुमति दी। रामसागर बाबू को फोन किया। वे लोग आये। उन्हें जाने के विषय में कह दिया। अरविन्द की इच्छा थी कि मैं उनको छोड़कर नहीं जाऊँ। लेकिन विष्णुदेव बाबू ने मुझे अपनी स्वीकृति दे दी। फिर वे घूमने निकले।

छह बजे त्रिभुवन विश्व विद्यालय में हम लोगों के स्वागतार्थ आयोजन था। स्वागत-भाषण के उपरान्त हम लोग वहाँ एक घण्टे तक रहे। वहाँ से हम लोग प्रधान मन्त्री श्री सूर्यनारायण थापा के यहां गये। उनसे बातें कीं। फिर काठमाण्डू से दस मील उत्तर भक्तपुर में राष्ट्रीय पंचायत द्वारा अभिनन्दन हुआ। डा० 'सुधांशु' के सभापतित्व में एक गोष्ठी हुई जिसमें स्थानीय सभी कवियों ने कवितायें सुनायीं। भक्तपुर पहले मल्लराजाओं की राजधानी था। वहां का राजमहल अपनी चित्रकला के द्वारा अपने अतीत वैभव की याद दिलाता है। उत्सव-समाप्ति के बाद हम लोग काठमाण्डू गये। रास्ते में कोठारी सड़क देखी जिसे चीन ने तिब्बत तक बनाया है। सड़क बहुत ही मजबूत और चौड़ी है। होटल में हाथ-मुंह धोने और कपड़े बदलने के बाद हम अपने भारतीय दूतावास में गये। वहां हम लोगों के सम्मान में महामहिम श्री राजबहादुर जी ने एक पार्टी आयोजित की थी। बहुत लोगों से भेंट हुई। वहीं कविवर डा० श्यामनन्दन 'किशोर' से, जो अपने जत्थे के साथ आये थे, भेंट हुई। भारत सरकार द्वारा निर्मित सड़कें तथा कई अन्य चीजें देखीं। सड़कें बहुत ही अच्छी और बेश कीमती हैं जिन पर मोटर की तेजी का पता नहीं चलता। ऐसी सड़कें भारत में सभी जगह बन जायें तो सब को परिवहन की सुविधा प्राप्त हो जाय। वहाँ से सात बजे हम लोग नेपाली साहित्य संस्थान के उत्सव में गये जो काठमाण्डू से चार मील उत्तर बालाजू

पार्क के ऊपर नागार्जुन पर्वत पर आयोजित था। श्रीमान भक्त नेपाल के बहुत विख्यात कवि थे। इसी स्थान पर उन्होंने नेपाली भाषा में रामायण लिखी थी। जिस प्रकार भारत (मैसूर) वृन्दावन में नदी को बांधकर तट-वन्ध वनाये गये हैं उसी प्रकार यहां झरनों को वांध कर अनेक सुन्दर स्रोत वनाये गये हैं। इस वालाजू के ऊपर नागार्जुन पर्वत पर एक मकान है। वहां हजारों व्यक्तियों की भीड़ थी। भोजन आदि की व्यवस्था वहुत अच्छी थी। विष्णु-देव वावू, गणेश, "अरविन्द" और दीपकुमार समय पर घूम-फिर आ गये। सर्व श्री 'नारायण' 'रूद्र', शारदाचरण, डा० वजरंग वर्मा, प्रो० जगदीश नारायण चौवे और अव्दुर्रशीद 'आरिफ' भी समय पर आये। नेपाल के सभी लव्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकार, कवि, लेखक और साहित्य-प्रेमी आये। भारत के कवियों की एक पुस्तक साहित्यिक संस्थान की ओर से भेंट की गई जिसमें कवियों की हिन्दी कविताएं नेपाली भाषा में अनूदित थीं। उसकी भूमिका के दो शव्द उद्धृत हैं—

"निराला परिषद् का आमन्त्रित कवि हरू वाहेक हिन्दी का अरू तीन अन्यतम कवि तथा साहित्यकार सर्व श्री डा० लक्ष्मीनारायण सुधांशु डा० शिवमंगल सिंह 'सुमन' कपिल देवनारायण सिंह 'सुहृद' लाई पनि सादर आम-न्त्रित गरयौं। उहाँ हरूले तत्काल हाम्रो आतिथ्यो स्वीकार गरी मित्रतापूर्ण स्नेह देखा उनु भयो।"

भारत के राजदूत महामहिम श्री राजवहादुर जी साढ़े वारह वजे रात तक कवि सम्मेलन में रहे। वे कविता के विषय में कभी-कभी सरस-मनोरंजक टिप्पणी करते थे जिससे श्रोता आनन्दित हो जाते थे। 'सुमन' जी ने अधिक कविताएँ सुनायीं जिन्हें सुनकर लोग मन्त्र-मुग्ध हो गये। राजवहादुर जी जिस समय कवि-सम्मेलन में पधारे थे, सभी के चेहरे आनन्द से खिल उठे थे। वे सभी से घुल-मिलकर वतियाते थे और अपने यहां आने को आमन्त्रित करते थे। गोष्ठी में इस प्रकार घुल-मिल गये कि यह पता नहीं चलता था कि वे विराट व्यक्तित्व के भारत के राजदूत हैं। वस्तुतः ऐसे व्यक्ति ही अपने जीवन में सफलता की चरम सीमा पर पहुंचते हैं।

कवि सम्मेलन के उपरान्त सभी ने योजन किया। विष्णुदेव वावू, "अरविन्द", गणेश और दीपकुमार को एक सज्जन अपनी गाड़ी से उन लोगों के निवास स्थान पर पहुंचा आये। महामहिम श्री राजवहादुर जी डा० सुधांशु और मुझे अपनी गाड़ी से शंकर होटल पहुंचा गये। रात में साढ़े वारह वज रहे थे। हम उनकी सरलता और निरहंकार देखकर मुग्ध हो गये।

१४ जून ६८ को मैं 'सुमन' (उप कुलपति, उज्जैन विश्व विद्यालय) के कमरे में गया।

उन्होंने कहा—'कवि-सम्मेलन दो बजे तक चला।' आठ बजे विष्णुदेव बाबू, रामसागर बाबू, अरविन्द- गणेश, दीपू और महाकवि 'व्यथित' जी के साथ और लोग आये। हम लोग सभी लोगों से मिले। नौ बजे के पूर्व ही हम महाकवि 'व्यथित' जी के साथ हवाई जहाज के अड्डे पर पहुंचे। रामसागर बाबू, विष्णुदेव बाबू, अरविन्द, गणेश और दीपू दूसरी गाड़ी से आ गये थे। वहां बड़ा कोलाहल था। हमें विदा करने वालों की बड़ी भीड़ थी। श्री चित्तरंजन नेपाली का आफिस जाने का समय हो गया था। वे हम से मिल कर चले गये। नेपाल एयर लाइन का जहाज आया। महाकवि 'व्यथित' जी ने हमें फूल मालाएँ पहनायीं मानो भारत-नेपाल-सौहार्द मित्रता को उन्होंने मालाओं में गूँथा हो। लोगों ने दोनों देशों का जयकार किया—जय भारत! जय नेपाल! जहाज पर चढ़ते समय हमने अपने नेपाली मित्रों से कहा—'हम लोग सम्पूर्ण भारत की ओर से यहां आपसी प्रेम, भातृत्व-भाव, मित्रता और शान्ति का संदेश लेकर आये थे और यहां से सम्पूर्ण नेपाली भाइयों की ओर से यही भारत लिये जा रहे हैं।'

हम लोग जहाज में बैठे। जहाज उड़ा। उस समय मुझे वे बच्चे याद आये जो हमारे साथ वहां गये थे। बारह बजे हम पटना पहुंचे। इस प्रकार लौटने की तिथि के दो दिनों पूर्व ही हम पटना आ गये। फोन किया। गाड़ी आई। कस्टम वालों ने सब सामान जांचकर हमें दे दिये। हम लोग चले। 'सुधांशु' जी अपने डेरे में गये और मैं स्टेशन गया। गाड़ी से मोकामा आया। वहां एक मोटर मिली जिसने मुझे द्वारका बाबू के पेट्रोल पम्प, बीहट तक पहुंचा दिया। मुझे देखकर द्वारका बाबू आश्चर्य करने लगे। चाय चली। लल्लू (रवीन्द्रनारायण) को फोन किया। वे मोटर लेकर आ गये। सामान मोटर में रखे। सात बजे संध्या में मैं सुहृदनगर पहुंच गया।

इस यात्रा की अनेक सुखद स्मृतियाँ मुझे आजीवन याद रहेंगी और खिन्नता, क्लान्ति और विषण्णता की वेला में मेरे मन-प्राणों पर एक अनिर्वचनीय आह्लाद, उल्लास और पुलक की वर्षा करेंगी।

१४।६।६८

पो० सुहृदनगर
जि० मुंगेर

सुहृद नगर में

सन् १९६८ ई० की पहली जनवरी ने मुझे जो अप्रत्याशित आनन्द उल्लास दिया उस की स्मृति मेरी सुखद स्मृतियों के कोष में सदा जीवित रहेगी। नवीन वर्ष ने मुझे नवीन हर्ष दिया था। नेपाल के भूतपूर्व मंत्री महाकवि श्री केदारमान 'व्यथित' अव कुलपति त्रिभुवन विश्वविद्यालय सुबह की चार बजे वाली गाड़ी से जोगबनी (विराट् नगर) से सुहृद नगर में पधारे और नौकर से कमरा खुलवा कर आराम करने लगे। पाँच बजे जब मैं स्नान-ध्यान-पूजा-पाठादि से निवृत्त हुआ तब उनके शुभागमन की सूचना मुझे मिली। मैं अपनी लघुता का ध्यान कर उन की महत्ता के सामने नतमस्तक हो गया। मुझे विस्मय हुआ कि इतने बड़े महापुरुष ने अपनी चरण-धूलि से मेरा गृह पवित्र किया। मुझे ऐसा लगा जैसे मैंने स्वर्ग की सारी निधियाँ प्राप्त कर ली हों। मेरे रोम-रोम में अनिर्वचनीय आनन्द-स्रोत प्रवाहित होने लगा। छलांगता हुआ दुमंजिले की सीढ़ियाँ लाँघी और उनके कमरे में पहुँच कर उन्हें प्रणाम किया। नौकर को चाय लाने का आदेश दिया। किन्तु उन्होंने बतलाया कि चाय उन्होंने बहुत पहले पी ली थी।

सूर्य की किरणों ने नीहार-जाल को छिन्न-भिन्न किया और चारों ओर हल्की गुलाबी रंग की अगणित रेखाएँ खींच दीं। हम लोग तिमंजले पर धूप में आये और विभिन्न प्रकार की बातें करने लगे। मुझे ज्ञात हुआ कि उनके व्यक्तित्व में साहित्यकार और राजनीतिज्ञ के व्यक्तित्व समान रूप में समाहित हैं जिन पर निरंहकारिता छायी हुई है।

तब तक जलपान आ गया। उन्होंने जलपान किया। जलपान-चाय में बेगूसराय नगर पालिका के चेयरमैन श्री इन्द्रमोहन प्रसाद ने भी योग दिया क्योंकि वे भी टहलते हुए आ गये थे। वे एक घण्टे तक ठहरे और 'व्यथित' जी को शाम में अपने डेरे पर पधारने का अनुरोध किया। मैंने लक्ष्मी-सरस्वती के लाड़ले पुत्र श्री विष्णु देवनारायण एल० एल० बी० उनके सुयोग्य पुत्र श्री अरविन्द कुमार 'अरविन्द' और रवीन्द्रनारायण को व्यथित जी के आगमन की सूचना फोन द्वारा दी। तीनों पिता-पुत्र आये। वे लोग बारह बजे तक

बैठे रहे। उनके जाने के बाद 'व्यथित' जी ने भोजन किया और आराम करने लगे।

सन्ध्या में हम लोग श्री इन्द्रमोहन प्रसाद जी के डेरे में गये। वहाँ जलपान किया और चाय पी। हम लोगों की सामूहिक तस्वीर खींची गयी। हम लोग बाजार में घूमते हुए श्री विष्णुदेवनारायण के घर पर गये। वहाँ श्री द्वारका प्रसाद मस्करा, श्री रामदयाल मस्करा, श्री विन्देश्वरी प्रसाद सिंह (आचार्य) और श्री गणेश बहादुरसिंह आये। मस्करा-द्वय बेगूसराय के प्रतिष्ठित रईस हैं। श्री विन्देश्वरी प्रसाद सिंह स्थानीय बी० पी० उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के आचार्य हैं और उत्साही व्यक्ति हैं। गणेश, नेपाली भाषा के कहानीकार हैं। वे सच्चे अर्थों में सृष्टा कलाकार हैं। सब व्यक्ति वहाँ बहुत देर रहे। सबका पारस्परिक परिचय हुआ। व्यथित जी ने वहीं भोजन किया और सबको नेपाल आने का निमंत्रण दिया। उनका आमंत्रण मात्र औपचारिक नहीं था वरन् आत्मीयता से पूर्ण था। हम लोग आपस में इतने घुल-मिल गये कि मालूम होता था कि हम लोग एक ही परिवार के सदस्य हों। 'व्यथित' जी की निरंहकारिता, सरलता और सादगी पर हम सब मुग्ध हो गये। हम लोग उनकी कविताओं का आनन्द प्राप्त करते रहे। ग्यारह बजे रात तक मजलिस में उनके साहित्य का रंग छलकता रहा और हम लोग उसमें सराबोर होते रहे। उसके बाद श्री विष्णुदेव नारायण, श्री अरविन्द श्री रवीन्द्र नारायण और श्री गणेश मोहर से 'व्यथित' जी को सुहृदनगर पहुँचा गये।

तब से 'व्यथित' जी जब इस ओर से गुजरते हैं, वे हमें अपना कार्यक्रम सूचित कर देते हैं। हम लोग उनके सम्मान में बरौनी जंक्शन स्टेशन जाकर उनके लिए सभी सुख-सुविधाओं की व्यवस्था करते हैं। जब वे पटने में रहते हैं तब हम लोग उन तक पहुँच जाते हैं। वस्तुतः दो देशों की मित्रता और सम्पर्क का जितना बढ़िया साधन साहित्य है उतना बढ़िया अन्य साधन नहीं है क्योंकि साहित्य में देश का हृदय बोलता है, भावनाएँ व्यक्त होती हैं, स्वप्न अपनी झलक दिखाते हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। 'व्यथित' जी ने भारत-नेपाल-सम्पर्क को साहित्य के माध्यम से सुदृढ़ किया है।

बी० पी० बहूद्देशी विद्यालय, बेगूसराय की ओर से २६ फरवरी १९६८ ई० को 'उषा' नामक एक पत्रिका प्रकाशित हुई थी, जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष श्री सेठ गोविन्द दास

और विहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष श्री राम दयाल पाण्डेय ने भी की थी। उसमें 'व्यथित' जी की 'चींटी' शीर्षक कविता प्रकाशित हुई जिस की कुछ पंक्तियाँ यों हैं—

"कालानिल तर्जित घन-तृण में
इधर-उधर प्रतिपल छिप-छिपकर,
इस प्रत्यावर्तन के पथ पर
विद्युत् का व्याकुल अभिनय कर,
संभ्रम संभ्रम दौड़ रही है
चींटियों की लम्बी-सी पाँत!"

इस प्रेरणाप्रद कविता से 'उषा' गौरवान्वित हुई, इसमें सन्देह नहीं। "व्यथित' जी का निवास स्थान मंजु श्री बाजार (काठमाण्डू में) और इस विराट नगर (पुराने हवाई अड्डे से निकट ही दक्षिण) है।

मेरे मस्तिष्क में पहले यह बात कभी नहीं आती थी कि नेपाल एक दूसरा देश है और था भी नहीं। सन् १९२४ ई० में मैं सर्वप्रथम झिटकी गाँव (दरभंगा) से श्री चन्द्र चूड़देव जी के साथ मोटर से जनकपुर गया। बीच में अनेक नदी-नाले पार किये। पगडंडी-ही-पगडंडी थी। जनकपुर के मन्दिर में चारो ओर सफाई की कमी थी। जगज्जननी सीता के दर्शन किये। घूम-फिर कर हम लोग झिटकी गाँव आ गये।

मेरे परिवार के सदस्य अक्सर पशुपतिनाथ के दर्शनार्थ काठमाण्डू जाते-आते थे। उस समय मुझे भारत-नेपाल में अन्तर प्रतीत नहीं होता था क्योंकि नेपाली विद्यार्थी बनारस, पटना, कलकत्ता आदि में पढ़ते थे और उपाधियाँ भी लेते थे। नेपाल के अधिकतर लोग कलकत्ते में रोजगार करते थे और भारत के विभिन्न भागों में नौकरी करते थे। आज भी वे बहुत संख्या में भारत में नौकरी करते हैं और अच्छे-अच्छे पदों पर हैं। राणा-परिवार के सदस्यों को मैं कभी कलकत्ते में और कभी मोकामाघाट में जहाज पर देखता था। श्री मातृका प्रसाद कोईराला को मैं बहुत दिनों से जानता था। कालान्तर में मैंने श्री विश्वेश्वर प्रसाद कोईराला को जाना। सन् १९३४ ई० में नेपाल की तराई में जयनगर के पास गया था। उस समय भारत और नेपाल की सीमा पर जहाँ-तहाँ प्रास्तरिक खम्भे निर्मित थे जिन से ज्ञान होता था कि सीमा के

उत्तर में नेपाल है और दक्षिण में भारत है, राष्ट्र कवि 'दिनकर' उन दिनों जयनगर में सब रजिस्ट्रार थे। उसी समय वहाँ दो-तीन दिनों तक मुझे रहने का मौका मिला था। सन्ध्या में मैं उस सीमा के भीतर टहलने को जाता था। नेपाली भाइयों के प्रति मेरे हृदय में अपनापन था और है। मैं उन्हें अपने यहाँ ठहराता था और कहीं-न-कहीं उन्हें वहाल कराता था और आज भी यह रफ्तार चालू है। अब वहुत नेपाली मेरे पारिवारिक सदस्यों-जैसे हो गये हैं और मुझ से वड़ी-वड़ी आशाएँ रखते हैं। मैं यथाशक्ति उनकी सहायता भी करता रहता हूँ। भारत-नेपाल मैत्री संघ तो लोगों ने अब खोला है। मैं भाई चारे का सम्वन्ध आज से चालीस वर्षों पूर्व से निभाता आया हूँ। आज भी मेरे गृह में दो-चार नेपाली भाई तव तक रहते हैं जव तक उन्हें काम नहीं मिल जाता। नेपाल के भूतपूर्व मंत्री महाकवि श्री केदारमान व्यथित से जव से परिचय हुआ है, नेपाल के साथ मेरे परिचय का दायरा और भी बढ़ गया है। २४ अप्रैल, १९६८ ई० को रवीन्द्र नारायण और श्री विष्णुदेव नारायण के साथ मैं फारवीसगंज (पूर्णिया) गया। रवीन्द्र नारायण की इच्छा हुई कि हम लोग विराटनगर से घूम आयें। हम लोग तैयार हुए। जोगवनी पहुँचे। वहीं से विराटनगर शुरू होता है। सड़क के उत्तर में विराटनगर है और दक्षिण में जोगवनी। अपने इलाके के सव लोगों से वातें कीं। लोगों ने वताया कि वह नेपाल का कस्टम कार्यालय है। मैंने एक भारतीय को साथ लिया। उन्होंने वहाँ के कस्टम कार्यालय में काम करने वालों से हमारा परिचय कराया। उनका नाम था श्री देव शर्मा। उन्होंने कहा कि मैं भी कहानी लिखता हूँ। कस्टम के नियमानुसार सव काम हुए। तव हमें विराटनगर जाने की आज्ञा मिली। वहाँ से महाकवि व्यथित का घर करीव दो मील दूर था। हम वहाँ पहुँचे। महाकवि घर से वाहर आये और हमें भीतर ले गये। चाय पी। इसके वाद हम वाजार को चले।

हम लोग श्री नगेन्द्र प्रसाद रिजाल जो वहाँ के अध्यक्ष थे, के यहाँ गये। वहाँ शर्वत आदि का दौर चला। वहाँ से वहाँ के वड़े हाकीम (राज्यपाल) श्री वद्री विक्रम थापा के यहाँ गये। वे एक वहुत वड़े कमरे में वैठ कर काम कर रहे थे। मिलने वालों की भीड़ थी। मिलने वाले जाते रहते थे और काम की वात कर चले जाते थे। वहाँ कार्ड का नियम (भारत-जैसा) नहीं था। थापा जी सैनिकों के अफसर के साथ काम में व्यस्त थे। इतना होने पर भी उन्होंने हमारा सम्मान किया। वहाँ से हम नेपाल के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्री मातृका प्रसाद कोईराला के यहाँ गये। वहाँ काफी देर तक वैठे। उन्होंने

अपने छोटे पुत्र की ओर संकेत करते हुए कहा—'यह तो आप के गाँव सिताब-दियारा (छपरा) श्री जयप्रकाश नारायण के साथ गया था।' मैंने उसे बगल में बिठाया। उस का नाम है 'संजय'। उस से बातें करते रहे। महाकवि व्यथित जी से बात-चीत के क्रम में कोईराला जी ने कहा—"कपिलदेव जी को मैं बहुत दिनों से जानता हूँ। वहाँ से हम लोग 'व्यथित' जी के घर गये। वे वहीं रह गये। हम लोग जोगवनी पहुँचे। नेपाल कस्टम वालों ने अपनी कानूनी कार्रवाई की। हमने गाड़ी देखी। श्री देव शर्मा से बातें कीं। अपने कस्टम वालों से बातें कीं। वहाँ से पूर्णिया पहुँचे। दुर्गा बाबू (इनकम टैक्स अफसर) के यहाँ जलपान किया। दस बजे रात में मैं सुहृदनगर पहुँचा।

नेपाल का क्षेत्रफल लगभग ४५ हजार वर्ग मील है। पश्चिम में लखनऊ के पास से इसका आरम्भ होता है। पूर्व में सिलीगुड़ी के पास तक इसकी सीमा है। दार्जिलिंग में बहुत नेपाली रहते हैं। वहाँ से सिलीगुड़ी तक पहाड़ों पर भारतीयों की अपेक्षा नेपालियों की संख्या अधिक है। नेपाली भाषा सिक्किम तक बोली जाती है। लेकिन नैनीताल में लोग हिन्दी ही बोलते हैं। नेपाल पहाड़ों से भरा है। उत्तर में जहाँ उसकी सीमा भारत से मिलती है वहाँ जमीन समतल है जिसे लोग तराई कहते हैं।

विराटनगर समतल जमीन पर स्थित है। वहाँ यह ज्ञात नहीं होता कि यह नगराज का कुछ अंश है जो गुलाब की तरह समतल भूमि पर विकसित है। लखनऊ में भी नेपालियों की संख्या कम नहीं है। उन में से कुछ हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ निकालते हैं। जब भी मैं लखनऊ जाता हूँ वे अखबारों में मेरा नाम देख कर मुझ से मिलने आते हैं तथा अपनी पुस्तकें मुझे भेंट करते हैं।

हिमालय की मुख्य चोटियाँ ये हैं—एवरेस्ट, गौरी शंकर, धवला गिरि इत्यादि। यहाँ धान पर्याप्त मात्रा में उपजता है। जंगलों में अच्छी-अच्छी लकड़ियों का भण्डार है। नेपाल में पहले केवल काठमाण्डू के अन्दर तीन मील तक पक्की सड़क थी जिस पर राणाओं की सवारी आती-जाती थी। कुछ दिनों पूर्व इस देश में न हवाई जहाज था न रेलगाड़ी। आज जयनगर से जनकपुर तक केवल १८ मील रेलगाड़ी चलती है। हवाई जहाज भी दो-तीन जगह जाने-आने लगा है। इस देश की तरक्की करने की कोशिश अंग्रेजों ने नहीं की। उन्हें नेपाल के वीर गोरखे सैनिकों की जरूरत थी। वे सोचते थे कि यदि नेपाल शिक्षित या सुसंस्कृत हो जायेगा तो यह वीरों की खान सदा के लिए खतम हो जायेगी और अंग्रेजी साम्राज्य अधिक दिनों तक नहीं टिकेगा।

नेपाल की सैनिक शक्ति की बुनियाद है पहाड़ी प्रदेश और आर्थिक शक्ति तराई की उर्वरा भूमि पर आधारित है। नेपाल के निवासी सरल और सत्य-वादी होते हैं। शैल कुमारियाँ पतिव्रता होती हैं तथा मर्दों के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर उनकी अभिन्न चिर-संगिनी होती हैं। उनकी भावनाएँ सात्विक होती हैं। विधवाएँ अपने जीवन का अधिक समय पूजा-पाठ में व्यतीत करती हैं। अधिकतर पुरुष ललाट पर चन्दन लगाते हैं। बहुत कम ब्राह्मण ऐसे होंगे जो चन्दनधारी न हों।

नेपाल के निवासियों की एक खूबी है जिसे आतिथ्य-सत्कार कहते हैं। वे अतिथियों की सेवा तन-मन-धन से करते हैं। इस युग में भी वे भारतवासियों की तरह 'अतिथि देवो भव' का चिर-वैदिक मंत्र जपते रहते हैं। इस सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उन्हें भोजन का अभाव है—वे दाने-दाने के लिए तरसते हैं। उनकी सारी जिन्दगी पेट की चिन्ता में कटती है। इतना होने पर भी वे अपने द्वार आये हुए अतिथियों या साधुओं या संन्यासियों का वे प्रेम-पूर्वक स्वागत करते हैं। उन के समाज में जो अतिथियों का सत्कार नहीं करता वह बहुत नीच और पापी समझा जाता है। वे जिन गुरुओं से दीक्षा ग्रहण करते हैं उन्हें ईश्वर-तुल्य मानते हैं। वे संयुक्त परिवार प्रथा के पालक होते हैं। वे उसे सम्माननीय मानते हैं। जो व्यक्ति माता-पिता से पृथक् अपनी पत्नी के साथ जीवन व्यतीत करते हैं वे अपने समाज में हेय दृष्टि से देखे जाते हैं। इस नियम का उल्लंघन पतित एवं नीच जातियों में होता है।

नेपाली अन्तर्जातीय विवाह के विरोधी नहीं होते। वन जातियों के जो व्यक्ति पन्द्रह-बीस रुपये मासिक रूप में कमाते हैं वे भी बहुविवाह कर लेते हैं।

जिस प्रकार भारत जब गुलाम था तब कोई भी ऊँचा पद अंग्रेजों को ही मिलता था उसी प्रकार नेपाल में राणा परिवार के ही सदस्य उच्च पदाधि-कारी होते थे। सन् १९२२ ई० में जब असहयोग-आन्दोलन छिड़ा था तब इसी आशय की कविता मैंने लिखी थी—

> हाय रे फिरंगिया भारत के कईले सत्यानाश।
> अस्सी बरस के हिन्दुस्तानी पावे पद पेशकार रे,
> सोलह बरस के गोरा कलक्टर रोज करावे सलाम।

नेपाल के अधिपतियों ने अपनी राष्ट्रीय भव्यता के निर्माण की पृष्ठ भूमि में गोरखनाथ की कल्पना प्रतिष्ठित की है। वैभवशाली राजवंश के संस्थापक

और महान् संयोजक सम्राट् पृथ्वी नारायण शाह गोरखनाथ के अनन्य उपासक थे। उन्होंने द्रव्यशाह और रामशाह द्वारा जय गोरखनाथ के रण घोष की परम्परा का विस्तृत प्रसार किया। आज भी गोरखा सैनिक इस रण घोष की प्रतिध्वनि के साथ समर भूमि में पदार्पण करते हैं।

नेपाल के सिक्कों पर नेपाल नरेशों के साथ-साथ गोरखनाथ का नाम श्री श्री श्री गोरखनाथ के रूप में अंकित है और ये सिक्के उन्हीं के श्रद्धा में समर्पित हैं। काठमाण्डू घाटी में गुहेश्वरी के ढालू कगारों पर स्थिति सुप्रसिद्ध मन्दिर में गोरखनाथ की काष्ठ-पादुका प्रतिष्ठित है। यह पादुका राजकीय मुकुट में भी देदीप्यमान रूप में अंकित है।

नेपाल-नरेश महाराजा महेन्द्र की प्रकृति आध्यात्मिक है। उन्होंने अपने आन्तरिक जीवन में गोरखनाथ से प्रेरणा प्राप्त की है। गोरखनाथ मन्दिर के महन्त गोरखा नरेशों के परम्परागत गुरु रहे हैं। 'गोरखा' शब्द भी 'गोरख' से व्युत्पन्न है। ऐतिहासिक नगर 'गोरखा' और 'गोरक्षपुर', जो गोरखपुर नाम से विख्यात है, गोरखनाथ के नाम पर ही बसे हैं।

नेपाल में विभिन्न जातियों के लोग बसते हैं। मुस्तांग-मवांग क्षेत्र में केवल वन-जातियाँ बसती हैं जो तिब्बती लोगों से बहुत मिलती-जुलती हैं। गोरखा नगर काठमाण्डू से पचास मील पश्चिम में स्थित है जहाँ प्राचीनकाल में शैव-मत के प्रचारक गुरु गोरखनाथ तपस्या करते थे। उसके निवासी गोरखे कहलाते हैं। 'गोरखा' शब्द बारहवीं शताब्दी में प्रचलित हुआ था। यह जाति वेदानुयायी सनातन धर्मी हिन्दुओं की ही एक शाखा है। इसमें ब्राह्मणों के अतिरिक्त ठकुरी तथा खस जातियों के क्षत्रिय अधिक विख्यात हैं। ठकुरी क्षत्रियों में शाहशाही, सेन मल्ल, खान और चन उपजातियाँ तथा खस क्षत्रियों में पाण्डेय, थापा, बस्नते विष्ट और कुँवर उपजातियाँ विशेष ख्याति हैं। तामाङ़, गुरूँग तथा मनर जातियाँ भी गोरखा जाति के ही अन्तर्गत हैं। खस और ठकुरी क्षत्रिय हिन्दू धर्मावलम्वी हैं। गोरखा जाति के लोग अपनी ही जाति में विवाह सम्बन्ध स्थापित करते हैं ताकि अपना खून बना रहे।

तामाङ़, गुरूँग और मनर जातियाँ नाम मात्र को हिन्दू हैं। वे बौद्ध हैं। उनकी भी अनेक उपजातियाँ हैं। वे आपस में विवाह करती हैं। इन जातियों के यदि किसी युवक और युवती में प्रेम हो जाये तो वर वधू के घर में तभी आता है जब वधू का पिता उसे बुलाता है। युवती का पिता जब युवक को दही-अक्षत का टीका लगाता है तब विवाह पक्का माना जाता है। इस को

'घोक दिन्नू' कहते हैं। मगर और गुरुंग जातियों में विवाह हिन्दू प्रथा के अनुसार होता है। विवाह के उपरान्त वर और वधू वस्त्रीय ग्रंथि-बन्धन में बँधते हैं। भारत में राजपूतों और ब्राह्मणों में यह रिवाज होता है।

नेपाल की केवल दो प्रतिशत जनसंख्या पढ़ी-लिखी है। अब स्वर्गीय महाराज त्रिभुवन के नाम पर विश्वविद्यालय स्थापित हो गया है। नेपाल में आज भी लोगों को ऊबड़-खाबड़ पगडंडियों पर ही चलना पड़ता है और मोटर से जहाँ सड़क रहने पर एक घण्टा लगता वहाँ पहुँचने में दो-दो दिन लगते हैं।

अब डाक, तार और टेलीफोन की व्यवस्था हो गयी है। पटने से काठमाण्डू विमान चालीस मिनटों में पहुँच जाता है। भारत से काठमण्डू तक पथ तैयार हो गया है जिससे मोटर काठमाण्डू तक आसानी से पहुँचती है। लेकिन देहातों में यह सुविधा नहीं है। सन् १९५४ ई० तक बाहर से आने वाले सामान, यन्त्र और मोटर को खोल कर आदमी की पीठ पर लाद कर काठमाण्डू तक लाये जाते थे।

काठमाण्डू में बिजली की व्यवस्था बहुत पहले से है। अब नेपाल में बिजली की व्यवस्था अनेक स्थानों पर हो गई है। विराटनगर में बहुत मिलें हैं। बहुत भारतीय वहाँ रोजगार करते हैं और वहाँ के निवासी हो गये हैं। १२ जून १९६८ ई० को काठमाण्डू में दो सज्जन मुझे मिले जो सुधांशु जी से बातें कर रहे थे। उन्होंने मुझे कहा—"सुहृद जी तो हमरा आर के नै पहचान लहो।" ज्ञात हुआ कि वे पूर्णिया के निवासी थे और वहाँ कुछ काम करते हैं। वे लोग पूर्णतः नेपाली वेशभूषा में थे। इसलिए उन्हें पहचानने में मुझे थोड़ी दिक्कत हुई थी।

राजा के रहते हुए यहाँ के राणा (जो प्रधान मन्त्री होते थे) ही शासन का कार्य करते थे। उनके शासन-काल में नेपाल की अधिकतर जन संख्या गरीबी से गुजर रही थी। यहां के निवासियों को संसार की आधुनिक सभ्यता की कोई भी सुविधा उपलब्ध न थी। लेकिन सन् १९५०-५१ ई० में राणाओं के निरंकुश शासन के खिलाफ जन क्रान्ति का बिगुल बजा। नेपाल की जनता जाग उठी। नेपाल के महाराज (स्वर्गीय) श्री त्रिभुवन ने बुद्धिमत्ता से काम लिया। वे अपने राजमहल से जनता को आशीर्वाद देने और नैतिक रूप से उसका नेतृत्व करने सपरिवार निकल पड़े। वे भारतीय दूतावास में चले गये। जन-क्रान्ति का नेतृत्व नेपाल निर्वासित कुछ नेपाली लोग ही कर रहे थे। जिस भारतीय दूतावास में महाराजा त्रिभुवन रहे थे उसका नाम अब 'शीतल-निवास' हो गया है और भारतीय दूतावास दूसरे भवन में चला गया है।

१२ जून, १६६८ ई० को नरेश का शुभ जन्मोत्सव 'शीतल-निवास' में ही सम्पन्न हुआ था। भगवान् ने महाराज त्रिभुवन के योग्य पुत्र महाराज महेन्द्र के रूप में नेपाल को एक सफल एवं प्रगतिशील शासक दिया। जब मैं काठमाण्डू गया तब हर तबके के लोगों से मिला। मुझे ज्ञात हुआ कि नेपाल के इतिहास की धारा को मोड़ने में नेपाल के वर्तमान शासक महाराजा महेन्द्र का मुख्यतः हाथ है। वस्तुतः उन्हें अपने देश में अपूर्व लोक प्रियता प्राप्त है जिस का प्रथम कारण है नेपाली जनता की राजतांत्रिक भावना और दूसरा कारण यह है कि अधिकतर जनता महाराज को भगवान् विष्णु का अवतार मानती है। नेपाल की सेना का हर सिपाही उनके प्रति अटूट श्रद्धा-भक्ति रखता है।

उन्होंने अपने जीवन की उनचासवीं बहार में अनेक उथल-पुथलें देखी हैं वे धैर्य और साहस से हर काम करते गये हैं। उनकी जिन्दगी की दो घटनाएँ उल्लेखनीय हैं। पहली घटना है सन् १६५० ई० की जन-क्रान्ति जब उन्होंने सिंहासन का अपना अधिकार लगभग खो दिया था और अपने पिता के साथ दिल्ली आये थे। दूसरी घटना यह है कि अपनी पत्नी के देहावसान के बाद सन् १६५० ई० में उन्होंने इस बात पर जोर दिया था कि मैं विवाह नहीं करूँगा और यदि करूँगा तो अपनी पत्नी की छोटी बहन रत्ना (राज्य लक्ष्मी देवी जो इस समय महारानी हैं।) के साथ ही। अन्त में उनके पिताने उन की इच्छा के अनुसार ही उनका विवाह करा दिया।

मैंने देखा कि वे जब प्रेम से लोगों से मिलते थे तब बहुत कम बोलते थे। उनकी यह मितभाषिता लोगों पर अमिट प्रभाव डालती थी।

अब नेपाल में अपना रेडियो स्टेशन है। ११ जून, १६६८ ई० को भारतीय तथा अन्य कवियों का एक सम्मेलन काठमाण्डू रेडियो स्टेशन पर हुआ था। काठमाण्डू चूंकि नेपाल की राजधानी है इस लिए चहल-पहल से भरा रहता है। नेपाल के जंगलों में जड़ी-बूंटियाँ पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं।

काठमाण्डू से लौटने के बाद लल्लू (श्री अरविन्द कुमार 'अरविन्द') की राय हुई कि हम विराट नगर भी एक दिन चलें। मैंने उन्हें बतलाया कि 'विराट नगर' जितनी विराटता समेटे हुए मालूम होता है उतना विराट वह नहीं है। लेकिन मैंने चलने की स्वीकृति उसे दे दी। उसकी राय हुई कि १५ जुलाई, १६६८ ई० को वहाँ चला जाय मोटर से। लल्लू (रवीन्द्र नारायण) ने कहा कि मैं भी चलूंगा—पूर्णिया-फारबीसगंज में काम है, करता चला आऊँगा।

निश्चित तिथि को सुबह में मोटर से रवीन्द्रनारायण, अरविन्द और श्री गणेश बहादुरसिंह के साथ विराटनगर के लिए प्रस्थान किया। दस बजे हम पूर्णिया पहुँचे। डाक बंगले में चाय पी। वहाँ से लल्लू के साथ शर्मा जी एकाउन्टेन्ट के डेरे पर गये। वहां भी चाय चली। पल्लू गणेश को कला भवन ले गये—दिखलाया।' वहाँ सुधांशु जी का मकान उसे दिखलाया। वहां से डाक बंगला गये। सारा सामान लिया। केयर टेकर सालाम की राय हुई कि मैं भी विराट नगर चलूं। उन्हें भी साथ लेकर विराट नगर के लिए प्रस्थान किया। फारबीस गंज में कई मित्रों से मिले। लल्लू जिस व्यक्ति के पास बैठे हुए थे, हम वहीं बैठे। चाय पी। वहां गणपत गंज के एक व्यक्ति थे जिन की बोली छपरे की बोली से मिलती-जुलती थी। वे खैरा स्टेशन के पास के निवासी थे। गणपत गंज में वे जहां रहते थे उस टोले का नाम छपरियाटोला पड़ गया है। वहां छपरे के सौ परिवार बसते हैं। उन्होंने मुझे घर चलने का आग्रह किया किन्तु समयाभाव से मैं उनके यहां न जा सका। वहां से हम जोगबनी पहुंचे। भारतीय चेक पोस्ट पर लोगों से बातें की। फिर होम-गार्ड आफिस में गये और बातें की। पुनः हम नेपाल के चेक पोस्ट पर गये। उन्होंने अपनी कार्यवाई कर जाने की हमें आज्ञा दी। हम विराट नगर चले। कविवर 'व्यथित' जी के घर गये। वे काठमाण्डू में थे। उनके पुत्र का नाम विनोद है और छोटी पुत्री का नाम कल्पना। हम विनोद के साथ बाजार की ओर चले। वहाँ से हम अंचलाधीश श्री बद्री विक्रम थापा के यहां गये और उनसे पल्लू और गणेश का परिचय कराया। वे आपादमस्तक विनम्रता की मूर्ति थे। मैंने उन्हें अपनी दो पुस्तकें दीं—'जग जीवन' (गद्य) और 'सुहृद'। पहली पुस्तक को उलट पुलट कर देख लल्लू की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा—'आप का भी फोटो है।' दूसरी पुस्तक को देखने के बाद उन्होंने मुझे कहा—'आप भूत और वर्तमान दो राष्ट्रपतियों के साथ बैठे हैं।' उन की सरस-स्निग्ध वाणी से मेरे मन में गुदगुदी पैदा हुई। मैंने मुस्कुरा दिया। उन्होंने भोजन के लिए कई बार आग्रह किया। जब चले तब वे ऊपर से नीचे चले आये और जब हम मोटर में बैठ गये तब वे ऊपर गये। उनके समान सुसभ्य-सुसंस्कृत व्यवहार-कुशल व्यक्ति अलभ्य नहीं तो दुर्लभ अवश्य है।

हम श्री मातृका प्रसाद कोईराला के यहां गये। वहां बहुत देर तक बैठे। उन्हें मैंने 'बीती बातें', 'मेरे अपने', 'व्यक्ति और व्यक्तित्व' तथा 'जग जीवन' नामक पुस्तकें दीं। वहां से हम चले। विनोद जी को उनके घर पर

उतार दिया। हम लोग जोगवनी होते हुए फारवीस गंज पहुंचे। वहाँ एक मित्र के यहां लल्लू बैठे। चाय पी। हम पूर्णिया पहुंचे। केयर टेकर डाक बंगले में गया। हम इन्कम टैक्स अफसर दुर्गा बाबू के यहां गये। उनका घर छपरे में दौलत गंज मुहल्ले में है। वे मन्दिर में पूजा करने को शस्तीक गये हुए थे। हम ठहर गये। तब तक वे आ गये। उन्होंने जलपान करने का आग्रह किया किन्तु समयाभाव से मैंने उनका आग्रह नहीं माना। आठ बजे रात में वहाँ से बेगूसराय के लिए प्रस्थान किया। सवा दस बजे हम बेगू-सराय पहुँच गये। पूर्णियाँ के एस. पी. हैं श्री रामवृक्षसिह। उन के हृदय में नेपाल के प्रति जो आत्मीयता है वह वर्णनातीत है जब उनसे भेंट होती है, नेपाल के विकास की कुछ न कुछ नयी जानकारी हासिल होती है। और सुनकर प्रसन्नता भी।

●

रंगीन जिन्दगी

नेपाल में ऐसे निवासियों की संख्या अधिक है जिन्हें अभाव प्यारा हो गया है। वे आर्थिक दृष्टि से असम्पन्न हैं, उन्हें आवागमन की कठिनाइयाँ है, वे अशिक्षित हैं, वेरोजगार हैं और रुग्ण हैं लेकिन हँस कर जीते हैं। वे निसर्ग की गोद में पालित पोषित होते हैं। वे निश्छल, निडर और निष्ठावान् होते हैं। उनमें सीधापन है और ईमानदारी भी। वे महत्वाकांक्षी नहीं है—सन्तोषी हैं। इसलिए वे दुःख में भी हँस कर जीते हैं।

शेरपाओं ने विवाह को पवित्र वन्धन माना है। वे एक पत्नी व्रत होते हैं। विवाह के महीनों-वर्षों पूर्व वर-वधु चुन लिये जाते हैं और नापसन्दगी की स्थिति में भी उन्हें विवाह वन्धन में वँधना पड़ता है।

उनके लिए विवाह एक सामाजिक उत्सव है। इस उत्सव में आसपास के गांव वाले भी सज-सँवर कर सम्मिलित होते हैं, सिंघ फूंकते हैं और ढोल पर थाप देते हैं नृत्य-संगीत में वे चांग नामक स्थानीय सुरा पीते हैं और मस्त हो जाते हैं। इस सरस वातावरण में वर-वधू प्रणय-सूत्र में वँधते हैं। नेवारी युवतियों की सिन्दूर रेखा चिता में ही मिटती है। जव नेवारी वालिकाएँ पाँच-छह वर्षों की होती हैं उनका परिणय वेलफल से होता है। वेलफल नदी के प्रवाह में प्रवाहित किये जाते हैं यह समझ कर कि ये अमर रहेंगे ताकि वालिकाएं विधवा न हों।

जव नेवारी वालिकाएँ वयसंधि प्राप्त करती हैं तव उन्हें एक अँधेरी कोठरी में अन्य परिणीता युवतियों के साथ रखा जाता है। वहाँ वे दैनन्दिन जीवन के सारे कार्य करती हैं। किसी शुभ दिन में वे अन्ध कोठरी से निकल नहा-धो शृंगार करती हैं और सूर्योपासना करती हैं। तव विना वर के वारात आती है और वधू को विदा करा कर ले जाती है। अव वारात में कुछ नेवारी परिवारों के वर भी जाते हैं।

कोई भी परिणीता युवती स्वेच्छा से अपने पति से सम्वन्ध- विच्छेद कर सकती है जिसकी विधि अत्यन्त सरल है यानी पति के तकिये के नीचे कुछ सुपारियाँ रख देना।

नेपाल में वर्ष में जितने दिन होते हैं उनसे अधिक उत्सव मनते हैं। होली, दुर्गापूजा, दीपावली, वसन्त पंचमी, मकर संक्रान्ति, शिव-रात्रि, रक्षा वन्धन, बुद्ध-जयन्ती आदि धार्मिक पर्वों के सिवा कुछ ऐताहासिक पर्व भी मनाये जाते हैं।

प्रथम वैशाख में काठमाण्डू और भातगाँव में भैरव की पूजा प्रतिष्ठा में भैरव-यात्रा निकलती है। इसके दो अंग हैं—रथ यात्रा और लिंग-यात्रा। रथ यात्रा में भैरव-भैरवी की प्रतिमाएँ ससमारोह नगर की प्रमुख सड़कों पर जुलूस में घूमती हैं। लिंग-यात्रा में प्रतिस्थापित प्रतिमाओं के समक्ष भैंसों की वलि दी जाती है और भक्त विशेष प्रकार की लकड़ियाँ और खंभे गाड़ते हैं।

प्रथम भाद्र में गाय-यात्रा का पर्व मनता है। भाद्र मास में ही इन्द्र यात्रा पर्व मनता है

इसमें इन्द्रोपासना होती है। काठमाण्डू आठ दिनों तक उल्लासोदधि में लीन रहता है। इस में नेवार लोग विशेष अभिरुचि प्रकट करते हैं। प्रत्येक गृह में दीपक जलते हैं और इन्द्र प्रतिमाएँ स्थापित होती हैं। इस अवसर पर देवीकुमारी की भी अर्चना होती है।

इतिहास साक्षी है, आठवीं शताब्दी में नेपाल में जयप्रकाश मल्ल का शासन था। उन्होंने एक युवती को अपने राज्य से इस लिए निर्वासित कर दिया चूँकि उन्हें विश्वास था कि उस से राज्य का अमंगल होगा। किन्तु रानी ने उन्हें सूचित किया कि मुझ में उसके सभी गुण-अवगुण उत्पन्न हो गये हैं और राज्य के अमंगल की संभावना है। राजा ने फौरन कुमारी युवती को सम्मान-सहित बुलवाया और उसके अंग रक्षक के रूप में दो सेवक नियुक्त किये। ये सेवक आज भी वांशिक रूप में वर्तमान हैं। जिस कुमारी वालिका का 'देवी कुमारी' के रूप में चुनाव होता है उसे आजीवन अविवाहित जीवन विताना पड़ता है। जब भी 'देवी कुमारी' ने विवाह किया है उसका पति शीघ्र मर गया है। धारणा है कि उसके पति के रूप में कोई भी व्यक्ति एक ही दिन जीवित रह सकता है। बौद्ध उसे तारा और शाक्त भगवान का अवतार मानते हैं। मच्छेन्द्रनाथ यात्रा के वारे में कहानी प्रचलित है। कहते हैं, मच्छेन्द्र नाथ के शिष्य गौरखनाथ की प्रतिष्ठा के अनुरूप नेपाल में उनका स्वागत नहीं हुआ। वे क्रुद्ध हो गये और काठमाण्डू उपत्यका के निकट ही अपना पर्ण कुटीर निर्मित किया। वे बारह वर्षों तक वहाँ रहे। तव तक वहां एक बूंद भी वर्षा नहीं हुई। भात गाँव के नरेश नरेन्द्रदेव ने मछेन्द्रनाथ से विनय की कि वे काठमाण्डू आयें। वड़ी मुश्किल से उन्होंने राजा की विनय मानी। गुरु दर्शन के लिए जव गौरवदास पहाड़ी से नीचे आये तव वर्षा हुई और भूमि सरस हुई। राजा ने घोषित किया कि मच्छेन्द्रनाथ की प्रतिष्ठा में प्रतिवर्श उत्सव मनाया जाये।

●

धर्म और शिल्प

नेपाल सर्व-धर्म-समन्वयी है। उसके निवासी विभिन्न धर्मावलम्वी हैं। लेकिन उनमें धार्मिक सहिष्णुता है। वे विभिन्न धर्मावलम्वियों के व्रत-त्योहारों में सोल्लास सम्मिलित होते हैं। यही कारण है, वहाँ हिन्दू और बौद्ध धर्मों की छाप ने एक नयी जीवन-पद्धति के रूप में विकास किया है।

नेपाल चूँकि बुद्ध की जन्मभूमि है, इसलिए उसमें बौद्ध धर्म का प्रचार प्रसार पर्याप्त है। आरंभिक शताब्दियों में नेपाल में बौद्ध धर्म अपने चरम उत्कर्ष पर था। महायानी नागार्जुन ने नेपाल में कुछ दिनों तक निवास किया था। तत्कालीन मन्दिर-चैत्य आज भी वर्तमान हैं। अशोक ने ललित पाटन नगर का शिलान्यास किया था और अपनी राजकुमारी चारुमती का विवाह नेपाली राजकुमार देवपाल से किया था। उन्होंने काठमाण्डू के आसपास अनेक विहार और स्तूप निर्मित कराये थे।

सातवीं शताब्दी में नेपाल नरेश अंशु वर्मन ने तिब्बत के राजा को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था और अपनी राजकुमारी भृकुटी देवी का विवाह उनके पुत्र के साथ कर दिया था। राजकुमारी भृकुटी देवी ने तिब्बत में बौद्ध धर्म का पर्याप्त प्रचार-प्रसार किया। उनकी स्मृति में तिब्बतियों ने ल्हासा में एक मन्दिर निर्मित किया था। अन्तरक्षित, कमलशील, दीपांकर शृंगायन आदि भारतीय विद्वानों ने नेपालियों और तिब्बतियों को अपनी वाणी से लाभ पहुँचाया था। तिब्वती विद्वान् अतिसा ने भारतीयों और नेपालियों को प्रवचनों से लाभान्वित किया था। पहले तिब्वत-चीन और भारत के बीच नेपाल के माध्यम से धार्मिक प्रचार अवाध गति से होता था।

शंकराचार्य ने जब भारत में बौद्ध धर्म की जड़ हिला दीं तब नेपाल में भी बौद्ध धर्म की जड़ें हिलने लगीं। जब नेपाल के शासन की बागडोर गोरखा-नरेशों के हाथों में आई तब ब्राह्मण धर्म फैलने लगा क्योंकि वे ब्राह्मण धर्मानुयायी थे। लेकिन वे बौद्ध धर्म के प्रति असहिष्णु नहीं थे।

३० जुलाई, १९४४ ई० में राणा प्रधान मन्त्री युद्ध शमशेर ने एक

आदेश निकालकर बौद्ध भिक्षुओं को प्रवचन देने, उत्सव मनाने, संघ में सदस्य दाखिल करने और ब्रह्मचर्य जीवन विताने से वंचित किया। जिसके फल-स्वरूप सभी बौद्ध भिक्षुओं ने नेपाल त्याग। और भारत में रहने लगे। उन्होंने ३० नवम्बर १९४४ ई० में सारनाथ में 'धर्मोदय सभा' स्थापित की और नेपाली बौद्धों से सम्पर्क स्थापित किये रहे इससे नेवारी साहित्य और नेपाल के बौद्ध धर्म के लिए एक नवीन युग का सूत्रपात हुआ।

सन् १९४६ ई० श्री लंका से सद्भावना मण्डल नेपाल आया। उसे नेपाल में एक चैत्य-निर्माण की आज्ञा प्राप्त हो गयी जिस से पुनीत अस्थि अवशेष की स्थापना हुई और अनुराधा पुर के पुनीत वोधि वृक्ष की एक शाखा रोपी गयी। सद्भावना-मण्डल के अनुरोध से तत्कालीन प्रधान मन्त्री ने वैशाख पूर्णिमा को बौद्धों के लिए छुट्टी का एलान किया।

धर्मोदय सभा सक्रिय है। उसका प्रधान कार्यालय काठमाण्डू के श्रृंग विहार में है और विभिन्न स्थानों में शाखाएँ हैं। जब राणा-शासन की समाप्ति हुई तब बौद्ध धर्म को सर्वमान्य सुविधाएँ मिलने लगीं। नालन्दा में रखे सारिपुत्र और मोद्गल्यायन के पवित्र अस्थि-अवशेष काठमाण्डू में लाये गये। बौद्ध विद्यालय आनन्द कुटी विहार को सरकारी मान्यता प्राप्त है।

अन्तर राष्ट्रीय बौद्ध-सम्मेलनों में नेपाल धर्मोदय सभा के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। प्रथम विश्व बौद्ध सम्मेलन में, जो श्री लंका में आयोजित था और द्वितीय विश्व बौद्ध-सम्मेलन में, जो जापान में आयोजित था, क्रमशः अमृतानन्द और मणि हर्ष तथा अमृतानन्द और केशरलाल ने नेपाल का प्रति-निधित्व किया था।

नेपाल की आधी जनसंख्या बौद्ध है। तमांग, शेरपा, लेपचा, किरानी, गुरूँग और अधिकतर नेवार बौद्ध हैं। नेवार महायानी हैं और अन्य लोग 'लामावादी' हैं। कुछ लोग 'थेरावादी' हैं।

नेपाल संसार का अकेला हिन्दू राष्ट्र है। उस के निवासी प्रकृतितः धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। उनके लिए पशुपतिनाथ का मन्दिर परम श्रद्धा का स्थान है। विना उनकी उपासना के कोई नेपाली स्यात् ही अन्य जगह की यात्रा करता है।

किंवदन्ती है कि पशुपतिनाथ के स्पर्श से लोहा स्वर्ण में परिणत होता है। कहते हैं, नरेश शिवरात्रि के दिन लोहे की एक छड़ लाते हैं। जिसे पशुपति-नाथ का स्पर्श करा कर स्वर्ण में परिणत कर लेते हैं जिससे वर्ष-भर सेना का व्यय वहन करते हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि नेपाल में स्वर्ण-भण्डार है।

पशुपतिनाथ का मन्दिर वागमती नदी के कूल पर स्थित है। शिवरात्रि के दिन देशी-विदेशी लाखों हिन्दू पशुपतिनाथ के दर्शन को काठमाण्डू जाते हैं।

पुराणों में लिखा है कि शिव-पार्वती जहाँ क्रीड़ाएँ करते थे उसे 'मृगस्थली' कहते हैं। पशुपतिनाथ का मन्दिर मृगस्थली ही है। किरात जाति आरंभ में शैव थी। उसने ही पशुपतिनाथ का मन्दिर निर्मित कराया था। पशुपतिनाथ की संज्ञा किरातेश्वर भी है।

पशुपतिनाथ मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर स्वर्ण मण्डित नन्दी की मूर्ति स्थित है। मन्दिर दुमंजिला है। इसमें चार द्वार हैं। मन्दिर की ऊपरी छत रजत-निर्मित है। दोनों मंजिलों की छतों पर पीतल चढ़ी है। किवाड़ रजत-मण्डित हैं। उन पर शिव-प्रतिमाएँ हैं। गर्भगृह के द्वार के ऊपर रुद्राक्ष के दानों से 'पशुपति शरणम् और बुद्ध शरणम्' अंकित हैं। मन्दिर के सोपान संगमरमर-निर्मित हैं। सोपानों और फर्शों पर रुपये टँके हैं।

मन्दिर में चतुरानन शिव-लिंग है। इसका निर्माण बुद्ध से पूर्व हुआ था—यह कुछ लोगों की धारणा है। इसलिए कुछ लोगों की यह धारणा कि चतुरानन शिव-लिंग बुद्ध के जन्म, ज्ञान-लाभ, धर्म-चक्र-प्रवर्तन और निर्वाण के प्रतीक हैं, निराधार है। कहते हैं, दृश्य लिंग के अन्तःकरण में वास्तविक शिव-लिंग है। किंवदन्ती है कि इस का यथार्थ ज्ञान केवल नरेश को है।

मन्दिर के चारों ओर विभिन्न देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ पारस्परिक रूप में उत्कीर्ण हैं। इन में प्रधान है गुह्येश्वरी।

गुह्येश्वरी के दर्शन के उपरान्त ही पशुपति नाथ के दर्शन लोग करते है। यह चौकोर मन्दिर में है। आंगन के चारो ओर गृह हैं और मध्य में देवी का मन्दिर है। यह रजत-पण्डित है। इस गोलाकार स्थान में जल पूरित रहता है। भक्त यह जल ग्रहण करते हैं। इस जगह के ऊपर रजतका एक चौखूट छत्र है। आंगन के भीतर परिक्रमा निर्मित है जो ढाई फुट चौड़ी है।

हिन्दुओं के लिए पशुपति नाथ मन्दिर जो महत्त्व रखता है, बौद्धों के लिए लुम्बिनी में बुद्ध अवतीर्ण हुए थे। इस लिए लुम्बिनी बौद्ध-तीर्थ-स्थानों में प्रमुख है। इसकी खोज सबसे पहले जरनल कनिंघम के एक सहायक ने की किन्तु विफल रहे। १८९६ ई० में डा० ए० ए० फ्यूहर ने एक अशोक स्तभं खोजा और एक शिलालेख भी। शिलालेख की ब्राह्मी लिपि से ज्ञात होता है कि अशोक ने अपने शासन काल के बीसवें वर्ष में लुम्बिनी की यात्रा की थी, लुम्बिनी में बुद्ध की एक शिला-प्रतिमा निर्मित करायी थी और एक

स्तंभ भी। चूंकि यह बुद्ध की जन्मभूमि थी, इस लिए अशोक ने इसके निवासियों को कर और उत्पादन के अष्टांश से मुक्त कर दिया था।

लुम्बिनी के जीर्णद्धार के लिए नेपाल सरकार ने अनेक प्रयत्न किये हैं। वहाँ पर्यटक सूचना-केन्द्र और अतिथि-गृह स्थापित हैं। बुद्ध की पच्चीस हजारवीं वर्ष-गाँठ पर वहाँ एक विशाल बौद्ध-विहार निर्मित हुआ जिसमें बुद्ध की एक प्रतिमा भी स्थापित हुई। वहाँ डाकघर है और पुलिसचौकी भी। सेना की एक टुकड़ी का भी अड्डा है। १९६४ ई० में नेपाल नरेश श्री महेन्द्र वीर विक्रम ने लुम्बिनी उपवन में एक संगमरमरी स्तंभ निर्मित कराया था। यह गोरखपुर से लगभग पचास मील दूर है और नौगढ़ स्टेशन से इक्कीस मील। वैशाख पूर्णिमा को वहाँ बुद्ध जन्म-दिवस सोल्लास मनाया जाता है।

नेपाल मन्दिरों और चैत्यों का देश है। मन्दिरों-चैत्यों में नेपाली शिल्प-कला सुरक्षित है। बौद्ध और हिन्दू दोनों के मन्दिरों में पगोडा शैली की छाप है जो नेपाल की देन है।

काठमाण्डू में बौद्ध नाथ का मन्दिर है। यह धर्मदत्त के शासन काल में निर्मित हुआ था। इसके मध्य प्रकोष्ठ में कश्यप बुद्ध की अस्थियाँ संचित हैं। जनवरी में इस में हजार दीपों से रात आलोकित होती है। इस मन्दिर की सजावट अवर्णनीय होती है।

पहाड़ी पर स्वयंभूनाथ का मन्दिर है। यह बौद्ध मन्दिरों में सबसे प्राचीन है। इसके नीचे पाँच सौ सीढ़ियाँ हैं। इसमें मुख्य भवन के सिवा तेरह और भवन हैं। ये तेरह स्वर्गों के प्रतीक हैं। मुख्य मन्दिर के अन्तस्थल में एक प्रदीप प्रज्वलित रहता है। मन्दिर के बगल में एक गहरा जल-गह्वर है और एक प्रार्थना-चक्र भी जो छह फुट ऊँचा है।

काठमाण्डू के मध्य हनुमान ढोका है। यह १६५० ई० में राजा प्रताप मल्ल के द्वारा निर्मित हुआ था। यह प्राचीन राजदरबार का द्वार भी है। इसके निकट ही कालभैरव हैं जो शैव तांत्रिकों के आराध्य देव हैं।

पाटन के दरबार चौक पर कृष्ण मन्दिर है। यह १६३० ई० में निर्मित हुआ था। इसके निर्माता राजा नरसिंह मल्ल थे। यह मन्दिर महाभारत के विभिन्न प्रसंगों के चित्रों से अलंकृत है।

काठमाण्डू घाटी में पगोड़ा शैली का प्राचीनतम मंदिर भात गाँव में है जिसे चंगुनारायण का मन्दिर कहते हैं। कुमारी बहल चैत्य में कुमारी देवी

का मन्दिर है। इसके गवाक्षों में मनोरम नक्काशी है। भाद्र शुक्ल की चौदहवीं तिथि को यहां से समारोह जुलूस निकलता है और नरेशकुमारी देवी की अर्चना करते हैं।

पाटन नगर के एक पुरोहित अभयराज ने टेराकोटा शैलीमें चौदहवीं शताब्दी में महाबौद्ध मन्दिर का निर्माण कराया था। अन्यान्य मंदिरों में हिरण्यवर्ण महाविहार, मंजुश्री चैत्य, तुलजा भवानी, क्वावहल, नयनपोल, भैरव मन्दिर आदि उल्लेख्य हैं हर मन्दिर का अपना इतिहास है। हर मन्दिर के बारे में किंवदन्ती है और भिन्न जन-विश्वास भी।

●

नेपाली साहित्य

नेपाल में चूंकि अनेक जातियां हैं और हर जाति की अपनी एक भाषा है, इसलिए नेपाल में विभिन्न भाषा-भाषियों की संख्या लगभग तीस से ज्यादा है लेकिन हर भाषा-भाषी का साहित्य विकसित नहीं है । जिन भाषाओं के प्राचीनतम ग्रंथ उपलब्ध हैं उनमें नेपाली, नेवारी, भोजपुरी और मैथिली का नाम उल्लेख्य है ।

यह बात निर्विवाद रूप में मान्य है कि नेपाल में जितनी भाषाएँ बोली जाती हैं वे संस्कृत-अपभ्रंश या तिब्बत भाषा से उत्पन्न हुई हैं । यहाँ एक भाषा अपवाद है जिसे कोचे कहते हैं । यह तिब्बती भाषा से प्रभावित नहीं है । यह बोदो परिवार की भाषा है—यह भाषा विदों का विचार है ।

नेपाल के पश्चिमी क्षेत्रों में ये भाषाएँ और उपभाषाएँ प्रचलित हैं—नेवारी, गुरूंग, कुसुंडा, मगर, हाथू, चेपाँग, न्यारवा, मुर्मी आदि जो तिब्बती बर्मी परिवार की हैं । पूर्वी क्षेत्रों में ये भाषाएँ और उपभाषाएँ प्रचलित हैं—मोटे, सुनवार, लेपचा, स्यार्पा, राई, लिम्बू, घीमाल, कोचे, मेचे आदि जो किराती-परिवार की हैं । मैथिली, भोजपुरी, अवधि, बंगला और नेपाली की उत्पत्ति संस्कृत-अपभ्रंश से हुई है । इन भाषाओं और नेवारी की लिपि देव नागरी है ।

लैंपिक सादृश्य के आधार पर नेपाली हिन्दी, कश्मीरी, पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, उड़िया, बंगला, मैथिली, असमिया आदि से संम्पृक्त है । संस्कृति 'हस्त' नेपाली में 'हात' हो गया है जिसे हिन्दी में 'हाथ' कहते हैं ।

नेपाली साहित्य का आरंभिक काल वि. सं. १३९४ है । तत्कालीन साहित्य ताम्रपत्रों और शिलालेखों के रूप में था । श्री सरदार रुद्रराज पाण्डेय का मत है कि श्री शिवदेव पण्डित, जो वि. सं. १४१३ में कर्णाली प्रान्त के राजा पृथ्वी मल्ल के राजकीय आदेश के लेखक थे, नेपाली

नेपाली साहित्य

नेपाल में चूंकि अनेक जातियां हैं और हर जाति की अपनी एक भाषा है, इसलिए नेपाल में विभिन्न भाषा-भाषियों की संख्या लगभग तीस से ज्यादा है लेकिन हर भाषा-भाषी का साहित्य विकसित नहीं है। जिन भाषाओं के प्राचीनतम ग्रंथ उपलब्ध हैं उनमें नेपाली, नेवारी, भोजपुरी और मैथिली का नाम उल्लेख्य है।

यह बात निर्विवाद रूप में मान्य है कि नेपाल में जितनी भाषाएँ बोली जाती हैं वे संस्कृत-अपभ्रंश या तिब्बत भाषा से उत्पन्न हुई हैं। यहाँ एक भाषा अपवाद है जिसे कोचे कहते हैं। यह तिब्बती भाषा से प्रभावित नहीं है। यह बोदो परिवार की भाषा है—यह भाषा विदों का विचार है।

नेपाल के पश्चिमी क्षेत्रों में ये भाषाएँ और उपभाषाएँ प्रचलित हैं—नेवारी, गुरूंग, कुसुंडा, मगर, हाथू, चेपाँग, न्यारवा, मुर्मी आदि जो तिब्बती बर्मी परिवार की हैं। पूर्वी क्षेत्रों में ये भाषाएँ और उपभाषाएँ प्रचलित हैं—मोटे, सुनवार, लेपचा, स्यार्पा, राई, लिम्बू, धीमाल, कोचे, मेचे आदि जो किराती-परिवार की हैं। मैथिली, भोजपुरी, अवधि, बंगला और नेपाली की उत्पत्ति संस्कृत-अपभ्रंश से हुई है। इन भाषाओं और नेवारी की लिपि देव नागरी है।

लैपिक सादृश्य के आधार पर नेपाली हिन्दी, कश्मीरी, पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, उड़िया, बंगला, मैथिली, असमिया आदि से संम्पृक्त है। संस्कृति 'हस्त' नेपाली में 'हात' हो गया है जिसे हिन्दी में 'हाथ' कहते हैं।

नेपाली साहित्य का आरंभिक काल वि. सं. १३६४ है। तत्कालीन साहित्य ताम्रपत्रों और शिलालेखों के रूप में था। श्री सरदार रुद्रराज पाण्डेय का मत है कि श्री शिवदेव पण्डित, जो वि. सं. १४१३ में कर्णाली प्रान्त के राजा पृथ्वी मल्ल के राजकीय आदेश के लेखक थे, नेपाली

सर्वप्रथम नेपाली में 'रामायण' नामक महाकाव्य रचा। उन्होंने नेपाली जाति को भाषिक एकता—सूत्र में बांधा और भारत तथा नेपाल के धर्मगत, अध्यात्मगत और इतिहासगत सम्वन्ध सुदृढ़ किये।

नेपाली में वि० सं० १९४४ से पुस्तकें छपने लगीं। नेपाली के 'भारतेन्दु' थे श्री मोतीराम भट्ट उन्होंने भानुभक्त की कृतियाँ मुद्रित करा कर नेपाली साहित्य को चिरस्थायी वनाया। उन्होंने श्री राजीवलोचन जोशी के सहयोग से नेपाली की प्राचीन पुस्तकें खोजीं और उन्हें प्रकाशित किया। वे नेपाली गद्य के प्रवर्तक थे, अनुसन्धानी थे, आलोचक थे और निवन्धकार भी। वे प्रथम नेपाली नाटक-कार थे और पत्रकार भी। उन्होंने 'गोरखाभारत-जीवन' नामक नेपाली पत्रिका का प्रकाशन काशी से किया था। वे प्रतिभावान् साहित्य सेवक थे। उन्होंने नेपाली के शब्द-भण्डार की वृद्धि की और नेपाली साहित्य के विभिन्न अङ्गों की पूर्ति की। वे हिन्दी, उर्दू, बंगला, फारसी और अंग्रेजी के भी ज्ञाता थे। उन्होंने इन भाषाओं की कुछ कृतियों का रूपान्तर भी नेपाली में किया था। ये सब कार्य उन्होंने तीस वर्ष की अल्प आयु में ही किये हैं। उन्होंने प्रकाशन की जिस परम्परा का श्रीगणेश किया वह परम्परा उनके पश्चात् भी जीवित रही।

वि० सं० १९१२ से नेपाली में पाठ्यग्रंथ प्रकाशित होने लगे। इस दिशा में सर्वप्रथम कार्य किया बभांग के राजा जय पृथ्वी बहादुरसिंह ने। श्री राममणि दीक्षिताचार्य ने 'माधवी' पत्रिका भी प्राय: इसी समय निकाली थी। लेकिन दोनों व्यक्तियों ने कुछ दिनों के बाद अपने कार्य छोड़ दिये। इस युग में नेपाली काव्य ने एक नयी दिशा की ओर संकेत किया जिसके प्रमाण हैं श्री लेखनाथ पौड्यालय की सौन्दर्य-प्रधान कविताएँ। वस्तुत: वे नेपाली के वर्तमान युग के जनक थे। इस युग में राजगुरु श्री हेमराज का 'नेपाली भाषा व्याकरण' और शंभुनाथ प्रसाद आदि के लेख प्रकाश में आये। गद्यात्मक शैली में एक रूपता दिखने लगी जिसका प्रमाण है श्री चक्रपाणि चालीसे की गद्य-शैली। श्रीकुलचन्द्र गौतम ने 'अलंकार-चन्द्रोदय' नामक पुस्तक लिखी। व्याकरण और अलंकार की पुस्तकों के मुद्रण ने गद्य और पद्य दोनों पर अपना प्रभाव दिखलाया और भाषागत असंगति दूर होने लगी तथा काव्य में रस की प्राण - प्रतिष्ठा होने लगी।

श्री बालकृष्ण शमशेर ने नई बोली के कई नाटक लिखे। सरदार रूद्रराज पाण्डेय ने साधारण बोल चाली भाषा में लिखने की परम्परा चलाई। इसका

प्रमाण है उनकी 'रूपमती' रचना। इसके सिवा उन्होंने 'चम्पाकली' 'प्रायश्चित', प्रेम पर्याप्त' आदि उपन्यास लिखे और इतिहास से सम्बद्ध ग्रन्थ भी।

अब नेपाली का स्वरूप स्थायी हो गया और साहित्यिक शिल्प में रोज-ब-रोज बदलाव आने लगा। नवीन परम्परा के कवि-लेखकों में बालकृष्ण शमशेर, सिद्धिचरण, पुष्कर शमशेर, कृपा नारायण सिंह आदि स्मरणीय हैं।

श्री लक्ष्मी प्रसाद देवकोटा की काव्य-प्रतिभा ने 'मुनामदन' की रचना की जिससे नेपाली जातीय गीत 'भयाडेर' की काव्यात्मक श्री प्रकाश में आई। इसके अनन्तर अनेक कवियों ने जातीय गीत से सम्बद्ध कविताओं की सर्जना की जिनमें श्री धर्मराज थापा ने विशेष लोकप्रियता प्राप्त की। श्री भीमनिधि तिवारी की कहानियों और नाटकों में नेपाली गार्हस्थ्य जीवन के सजीव चित्र अंकित हैं। श्री केदारनाथ 'व्यथित' ने राजनीति के साथ-साथ साहित्य के प्रति भी अपनी अभिरुचि प्रदर्शित की। उनकी कविताओं में राष्ट्र प्रेम की प्रधानता है। श्री धरणीधर कोइराला, श्री सूर्य विक्रम ज्ञवाली आदि की कविताएं पुस्तकाकार में संगृहीत हैं। जिन गद्यकारों ने नेपाली साहित्य के सौन्दर्य में चार चांद लगाये हैं उनमें हृदय चन्द्र प्रधान, माधव प्रसाद घिमिरे, गोपाल प्रसाद रियाल, वाडदेल, जनार्दन शमशेर आदि उल्लेख्य हैं।

नेपाली भाषा प्रकाशिनी समिति ने अनेक पाठ्य पुस्तकों के रूपान्तर और प्रकाशन किये हैं और नेपाली भाषा कोश प्रस्तुत करने में हाथ बटाया है। श्री बालचन्द्र शर्मा के निर्देशन में 'शाही नेपाल अकादमी' जिसे यूनेस्को की सहायता प्राप्त है, नेपाली में ज्ञान विज्ञान की अनेकानेक पुस्तकें प्राप्त कर रही है।

नेपाली नेपाल की राष्ट्र भाषा है। अन्य सबल भाषाओं में हिन्दी और नेवारी है। मैथिली, भोजपुरी, अवधी और नेवारी भाषाओं के साहित्य भी काठमाण्डू के वीर पुस्तकालय, हेमराज पुस्तकालय और अन्यान्य व्यक्तिगत पुस्तकालयों में उपलब्ध हैं। इन पुस्तकालयों में छठी शताब्दियों की भी पाण्डुलिपियां हैं। नेपाल राष्ट्रीय अभिलेखालय प्राचीन साहित्य की सुरक्षा की दिशा में सक्रिय है ताकि शोधकर्ता उनका उपयोग आसानी से कर सकें।

भारत में मैथिली, भोजपुरी और अवधी हिन्दी के अन्तर्गत हैं। लेकिन नेपाल में ये भाषाएं हिन्दी के अन्तर्गत नहीं हैं। यही कारण है, हिन्दी का पलड़ा भाषा-भाषियों के आधार पर उठ गया है हालांकि नेपाल के हर हिस्से में हिन्दी बोली-समझी जाती है।

तराई क्षेत्र के विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम था हिन्दी। लेकिन डा० के० आई० सिंह जब प्रधान मंत्री हुए तब उन्होंने हिन्दी की जगह शिक्षा का माध्यम नेपाली को बना दिया।

नेवारी अपनी भाषा को पर्याप्त मान्यता दिलाने की दिशा में सक्रिय हैं। वस्तुत: नेवारी का अपना साहित्य भी है।

राणा शासन की परिसमाप्ति के उपरान्त नेपाल में बहुत पत्र पत्रिकाएं निकलने लगीं। जिन भाषाओं की लिपि देवनागरी है उनमें उनकी बाढ़-सी आई। वि० सं० २०१७ में नेपाल और भारत से नेपाल की भाषाओं में प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं की संख्या ३५७ थी। ३७ दैनिक पत्र प्रकाशित होते थे। भाषा के आधार पर नेपाल में नेपाली पत्रों की संख्या अधिक थी और है।

नेपाल में नेपाली भाषा में सर्व प्रथम पत्र प्रकाशित हुआ था—गोरखा-पत्र ३ ज्येष्ठ, वि० सं० १९५८ में। वि० सं० १९४२ में 'गोरखा भारत जीवन' नामक नेपाली का पत्र प्रकाशित हुआ था काशी से। गोर्खे खबरकात, चन्द्रिका, गोर्खासंसार, गोर्खा सेवक, गोर्खे समाचार, लिगसेखा आदि पत्रिकाएँ भारत के विभिन्न शहरों से नेपाली भाषा में प्रकाशित हुईं। मासिक पत्रिका 'शारदा' वि० सं० १९९१ में और मासिक पत्रिका 'उद्योग' वि० सं० १९९२ में प्रकाशित हुई। नेपाली का सर्व प्रथम दैनिक पत्र था—आवाज। इसके अनन्तर अन्य पत्रिकाएं भी प्रकाशित हुई। श्री ब्रजनाथ माधव ने 'नया समाज' के द्वारा पत्रकारिता को एक नई दिशा दी। आजकल नेपाली, नया समाज कामनर, दि मदर लैण्ड, समाज, स्वतंत्र समाचार, गोरखा पत्र, समय, नेपाल, हाम्रो देश और नेपाल समाचार नामक दैनिक पत्र प्रकाशित होते हैं। अनेक साप्ताहिक पत्र भी प्रकाशित होते हैं।

पत्रकारिता के विकास के लिए प्रेस-आयोग बहाल हुआ और राष्ट्रीय संवाद समिति भी गठित हुई। नेपाल की भाषाओं के साहित्य की वृद्धि हो रही है।

नेपाल में मोटरगाड़ियों पर 'उ० का०' (उपत्यका काठमाण्डू) के साथ संख्या देवनागरी लिपि में अंकित रहती हैं।

काठमाण्डू के मार्ग में

काठमाण्डू हिमालय के क्रोड़ में स्थित है। यहां का प्राकृतिक सौन्दर्य मनोरम है। पहले यहां पहुंचना मुश्किल था जिसके दो कारण थे—आवागमन की असुविधा और राणा शासकों की नीति। राणा शासक वहां जाने की आज्ञा बहुत कम देते थे। उत्तरी दर्रों को लांघ कर तिब्बती व्यापारी नेपाल में प्रविष्ट होते थे और दक्षिण दिशा से भारतीय व्यक्ति। उत्तरी राहों में अनेक बाधाएं थी। लेकिन अब सारी बाधाएँ दूर हो गई हैं।

१९५१ ई० में इण्डियन नेशनल एयरवेज ने वायु सेवा का श्रीगणेश किया। फिर हिमालय एविगेशन कम्पनी ने काठमाण्डू से विराट नगर, भैरहवा और सिमरा के लिए वायु-सेवाएँ चालू कीं। १९५४ ई० में इण्डियन एयर लाइन्स कारपोरेशन ने सम्पूर्ण वायु सेवाओं के संचालन का भार लिया। १९५८ ई० में रायल नेपाल एयर लाइन्स कारपोरेशन स्थापित हुआ जो सभी वायु सेवाएँ चला रहा है। नेपाल में अनेक दुर्गम स्थानों को वायु सेवा से सम्बद्ध करने का कार्य हो रहा है। इसलिए जिन स्थानों की यात्रा में दिन और सप्ताह लगते थे अब मिनट और घण्टे लगते हैं। सिर्फ पैंतालीस मिनटों में आप पटने से काठमाण्डू पहुंच सकते हैं। ऐसा होने पर नेपाल में अधिकतर स्थलों पर पहुँचने के लिए पैरों का ही सहारा लेना पड़ता है।

दिन भर पैदल यात्रा करें और रात्रि में विश्राम। प्रत्येक चालू पहाड़ी मार्ग पर जगह-जगह रात्रि विश्राम के स्थल हैं जिन्हें चट्टियाँ कहते हैं। चट्टियाँ घास-पात से आच्छादित रहती हैं। वहां भोजन का भी प्रबन्ध रहता है। भोजन में भात और तरकारी तथा रक्सी नामक स्थानीय सुरा। चट्टियों का संचालन रमणियाँ भी करती हैं। उनके स्वागत-सत्कार में बहन का सा निष्कलुष स्नेह मिलेगा आपको। वहाँ भोजन तैयार करना अत्यन्त कठिन कार्य होता है।

जब चट्टियों की संचालिकाएँ श्रान्त होती हैं, अवसन्न होती हैं और चिन्ता मुद्राओं में होती हैं तब दया की पात्राएं बन जाती हैं। वे संकीर्ण पग-डंडी को निर्निमेष दृष्टि से देखती हैं—प्रतीक्षा की प्रतिमाएँ बन जाती हैं—स्यात्

राहियों के झुण्ड में उनके पति आ जायें। लेकिन जब प्रत्येक सन्ध्या में वे निराश होती हैं तब उनकी आंखें सजल हो जाती हैं। वे गुनगुना उठती हैं—'स्वर्ग नै भरो नौ लाख तारा मगन्न सक्ति नै। पेट को कुरा मुखमाँ आऊँछ, गभन्न सक्ति नैं।' अर्थात् आसमान में नौ लाख तारे हैं जिन्हें मैं गिन नहीं सकती। हृदय की बात मुंह तक आती है परन्तु कह नहीं सकती। भावुकता की इस धारा में वे अधिक देर तक नहीं बहती क्योंकि उन्हें सवेरे ही बिस्तर त्यागना है--मुसाफिरों के लिए चाय बनाने के लिए।

आजकल बहुत लोग पैदल नहीं चलते क्योंकि भारतीय अभियन्ताओं ने पहाड़ों को तराश कर त्रिभुवन राजपथ का निर्माण कर दिया है जो एशिया में अद्वितीय है और जिस पर मोटरें, बसें और स्कूटर भी चलते हैं। यह पथ ८३६२ फुट की ऊँचाई तक गुजरता है और निसर्ग के अनेक दृश्य सौन्दर्य का स्पर्श करता है। कहा जाता है कि ऐसे दृश्य अन्यत्र अलभ्य हैं। यह पथ भारत के रक्सौल शहर से आरम्भ होता है। इसके दोनों ओर वहां समतल शाद्वल हैं और धानी खेत हैं। चारों ओर अपूर्व सुन्दरता दृष्टिगोचर होती है। नेपाल की सीमा में जब आप इस पथ से प्रवेश करेंगे तब पहला शहर वीरगंज मिलेगा और दूसरा शहर सिमरा। पहला शहर रौतहट जिले का प्रधानावास है। आप सिमरा शहर से वायु सेवा द्वारा काठमाण्डू जाना चाहें तो जा सकते हैं। रक्सौल से काठमाण्डू तक वायुयान से पहुंचने में आधा घण्टा लगता है, मोटर से आठ घण्टे लगते हैं और पैदल यात्रा में बारह घण्टे।

सिमरा के बाद सघन कान्तार मिलते हैं। यदि आपने आज्ञा पत्र ले लिया तो वन में शिकार भी कर सकते हैं। वन की समाप्ति के बाद आप अमलेख-गंज पहुँच जाएंगे। वहां कस्टम वाले आपके कागज पत्रों की जाँच करते हैं। वहाँ से धीरे-धीरे चढ़ाई शुरु हो जाती है। सात आठ मील पर दो फर्लांग लम्बी एक सुरंग मिलती है। उसका निर्माण ब्रिटिश सरकार ने किया था।

५०० फुट की ऊँचाई पर हेठौड़ा स्थित है। वहाँ से ऊँचाई और बढ़ती है। भैंसा १५०० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। दोनों के बीच अनेक नदियां हैं और नाले हैं।

भैंसा से और कठिन चढ़ाई शुरु होती है। लामिडांडा ४६४३ फुट ऊँचाई है। उसके बाद पथ सर्प की तरह बल खाता हुआ सरकता है। यदि आप गफलत करेंगे तो हजारों फुट नीचे गड्ढे में गिर जायेंगे और आपके कचूमर निकल जायेंगे। पथ जितना खतरनाक है उतना ही चित्ताकर्षक भी। चारों

ओर हिमश्रेणियां दृष्टिगोचर होती हैं। यदि आप हिमर्तु में वहां जायेंगे तो आप पेड़-पौधों को हिमाच्छादित पायेंगे। यदि वर्फ की अधिकता होती है तो उसे हटाने के लिए बुलडोजरों का उपयोग करना पड़ता है।

सिभनजंग ८१६२ फुट ऊँचा है। वहाँ असीम और अनिर्वचनीय सौन्दर्य है। वहां से आप अनिच्छा से ही आगे बढ़ पायेंगे क्योंकि वहाँ प्रतिपल प्रकृति नवीन सौन्दर्य की रचना करती है। वहां से ढालू जमीन मिलती है। पथ के दोनों ओर आप चबूतरा प्रणाली की खेती देखेंगे।

पालंग ५८२२ फुट की ऊँचाई पर स्थित है। यह हृदयहारी घाटी है। इसके बाद आप किस्टरंग, जो ६२२६ फुट ऊँचा है, पहुंचेंगे। वहां आप श्रीधर पाठक रचित 'कश्मीर-सुषमा' के देश में पहुँच जायेंगे। निसर्ग का हरित वसन हृदय को खींच लेता है। यहां से काठमाण्डू तक पहुँचने में दो और पड़ाव मिलते हैं—साप्यांग और थानकोट।

जब आप काठमाण्डू पहुंचेंगे तो आप हिमालय के दर्शन की इच्छा स्वतः करेंगे। चीनियों ने जिस कोठारी काठमाण्डू सड़क की रचना की है उससे कोई भी पर्यटक सरलता से उत्तर दिशा से काठमाण्डू पहुँच सकता है। आज उलंघ्य हिमालय सुलंघ्य हो गया है। यदि आज रेनसांग होते तो वे चीन से काठ-माण्डू होकर भारत की सीमा में सरलता से प्रविष्ट हो जाते।

काठमाण्डू यद्यपि अचलाच्छादित है तथापि भारत के किसी आधुनिक शहर के समान है। लेकिन सम्पूर्ण नेपाल काठमाण्डू के समान नहीं है। सम्पूर्ण नेपाल काठमाण्डू से सम्पूर्णतः अलग है।

काठमाण्डू नगर के मध्य जितनी बड़ी समतल भूमि है उतनी बड़ी सम-तल भूमि न दार्जिलिंग में है न नैनीताल में। इसे टूडीखेल कहते हैं। यहां से काठमाण्डू का एक नवीन सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है। यहां लोग सुबह में वायु सेवन के लिए आते हैं। इसमें एक सुन्दर-विशाल-स्थायी मंच निर्मित है। 'टूडी' शब्द तूणीर का अपभ्रंश ज्ञात होता है जिससे प्रतीत होता है कि यहां लोग पहले धनुर्विद्या का अभ्यास करते होंगे।

नेपाल और भारत

नेपाल और भारत की मित्रता सदियों से अविच्छिन्न रूप में रही है। इसका कारण एक नहीं, अनेक हैं। एक की सीमा दूसरे की सीमा से मिलती है। हिमालय दोनों का दोस्त है और रक्षक है। दोनों उसे प्यार करते हैं। दोनों उसके लिए गौरवान्वित हैं। वह अटलता, अटूटपन और असीम धैर्य का प्रतीक है। इसलिए दोनों में गहरे सम्बन्ध हैं। दोनों एक दूसरे की उपेक्षा कर सुखसे नहीं रह सकते। दोनों देशों की पाँच सौ मील तक सीमाएँ मिलती हैं। दोनों सीमाओं के अन्तर्गत बसने वालों के रहन-सहन, वेश-भूषा, खान पान, रीति-रिवाज, पूजा-पाठ, सभ्यता और संस्कृति में समानता है। दोनों में रोटी-बेटी का रिश्ता है। दोनों की असमानता नगण्य है। पिता यदि भारतीय नागरिक है तो पुत्र नेपाली नागरिक है। यदि पुत्र चार भाई हैं तो दो भारतीय और दो नेपाली नागरिक हो सकते हैं। सीमा पर किसी भवनका अगला भाग नेपाल में है और पिछला भाग भारत में।

विगत ३० दिसम्बर १९६८ ई० को मेजर जनार्दन पाण्डेय ने एन० सी० सी० का वार्षिकोत्सव बड़ी धूम धाम से खगड़िया में किया था जिस अवसर पर पारितोषिक वितरण कर जब मैं बेगूसराय के एस. पी. श्री विजय प्रतापसिंह के डेरे पर गया तो ज्ञात हुआ कि उनके चाचा श्री चन्द्रप्रतापसिंह (बच्चा बाबू) की ससुराल नेपाल में है। इसी प्रकार लाखों भारतीयों की ससुराल या ननिहाल नेपाल में है और लाखों नेपालियों की ससुराल या ननिहाल भारत में है।

यदि नेपाल संसार का अकेला हिन्दू राष्ट्र है तो भारत भी हिन्दू बहुसंख्यक राज्य है। भारत के धाम और तीर्थ स्थल यदि नेपालियों के लिए पूज्य हैं तो नेपाल के पशुपतिनाथ का मन्दिर जिसे भारत के शंकराचार्य ने स्थापित किया था, हिन्दुओं के लिए भी आराध्य है। भारत से प्रतिवर्ष लाखों व्यक्ति पशुपतिनाथ की अर्चना करने को जाते हैं। जिस प्रकार हिन्दी संस्कृत-पाली से अद्‌भुत है उसी प्रकार नेपाली भी। हिन्दी और नेपाली दोनों की लिपि देवनागरी है।

महात्मा बुद्ध नेपाल के लुम्बिनी नामक स्थान पर अवतीर्ण हुए थे और न की प्राप्ति की थी भारत के बौद्ध गया नामक स्थान पर। जनक न्दनी सीता अयोध्या के राजकुमार राम की पत्नी थी। सीता और राम रतीयों और नेपालियों के लिए समान रूप में पूज्य हैं। शिव ने गाण्डीव री अर्जुन की परीक्षा शिकारी वेश में नेपाल में ली थी और उन्हें पाशुप-स्त्र प्रदान किया था।

भारतीय स्कूलों-कालेजों में जिस प्रकार नेपाली विद्यार्थी अध्ययन करते उसी प्रकार नेपाली स्कूलों-कालेजों में भारतीय शिक्षक अध्यापन करते हैं। द भारत ने नेपाली फौज को आधुनिक सामरिक विधियों से अवगत कराने प्रशिक्षण में योग दिया है तो भारतीय फौज में नेपाली गोरखा सिपाही नी सेवाएँ अर्पित करते हैं।

नेपाल और भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक सम्बद्धता का एक माध्यम ापार भी है। इतिहास साक्षी है, एक मुगल बादशाह ने नेपाल के पाटन के दीक भारतीय शैली में पांच स्तूप स्थापित किये थे।

लिच्छवियों ने नेपाली के कुछ हिस्सों पर अपनी सत्ता स्थापित की थी र वैशाली-सभ्यता का प्रसार किया था छठी शताब्दी में भारतीय मान-ने चंगुनारायण के मन्दिर में एक गरूडध्वज की स्थापना की थी। मध्य-ीं कालीन भारतीय तंत्रवाद नेपाल में भी फैला था। ग्यारहवीं शताब्दी नेपाल के तराई भाग में भारतीय सभ्यता की जड़े फैल चुकी थीं।

जिस प्रकार भारत पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्वतंत्र देश है उसी प्रकार नेपाल। इसलिए दोनो की गृहनीतियों और विदेशनीतियों में अन्तर हो सकता है। ी अन्तरराष्ट्रीय विषय के बारे में दोनों की पृथक्-स्वतंत्र नीतियाँ हो ती हैं। इतना होने पर भी दोनों की मैत्री कायम रह सकती है और ी चाहिए। भारत के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री स्वर्गीय पण्डित जवाहर लाल रू ने इस दोस्ती के बारे में व्यक्त किया था—"आपका हमारा रिश्ता करीब है—इतिहास से और दूसरी बातों से। तो जाहिर है, तकाजा यह है हम जहाँ तक बन सके, एक दूसरें की मदद करें, सहयोग करें। हम एक रे से जितना कर सकते हैं, सहयोग करें। ठीक है; लेकिन उसके पीछे जो ा है। वह यह कि दोनो तरफ से दिल साफ हो। इसके मानी यह नहीं हम एक दूसरे की हर बात मानें। जाहिर है, ये मानी दो आदमी में नहीं होते, तो व्यक्तियों में भी नहीं होते, फिर दो देशों में कैसे होंगे।

लेकिन दिल साफ हो और प्रेम की निगाह से एक दूसरे की तरफ देखें तो आपस में भरोसा बढ़े—दोनो का फायदा हो। एक दूसरे के दिल साफ होने से बातें साफ होती हैं। इसलिए इस जमाने में, इस दुनिया में, हम कोशिश करते हैं और कोशिश करनी चाहिए कि और देशों से हमारी दोस्ती हो, सब देशों से हो। जिन देशों से हमारा पहले कोई सम्बन्ध नहीं था, उनसे भी हम मित्रता करना चाहते हैं, तो फिर जो पुराने मित्र हैं, पुराने साथी हैं, पुराने पड़ोसी हैं, जाहिर है उन से और घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए। दूसरे की तलाश में पुराने दोस्तों को तो कोई नहीं भूलता है। अगर ऐसा हो, तो नये दोस्त भी भूल जायेंगे। फिर यह दोस्ती कायम नहीं रहेगी।

तो हर तरफ से, हर तरफ की पुकार का तकाजा है कि इस मुश्किल जमाने में आपको मेहनत करनी है, हमें मेहनत करनी है। हम अपने-अपने काम में फँसे होते हैं, फँसना चाहिए—चाहे, तो दुनियाँ को भूलकर भी फँसना चाहिए। कुछ काम इस तरह से भी होते हैं। लेकिन हम और बातों को चाहे कितना भी भूलें, हमारे काम और हमारे दोनो देश एक दूसरे से हर जगह मिले हैं। हम एक दूसरे को भूल नहीं सकते। हमारी दोस्ती से दोनों देशों को लाभ हुआ है और आगे भी होगा। इसलिए हम और देशों से चाहे जितना सम्वन्ध स्थापित करें, लेकिन एक दूसरे को न भूलें। सम्वन्ध की बुनियाद हमारे सम्वन्ध ही होते हैं। पुराने को छोड़कर नये हों तो न वह पक्का, न दूसरा पक्का।"

यही कारण है, संयुक्तराष्ट्र संघ में नेपाल और भारत ने ९० प्रतिशत प्रस्तावों के सम्बन्ध में एक ही पक्ष में अपने मत दिये हैं और एक दूसरे के खिलाफ भी मत दिया है। कुछ अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के बारे में दोनों ने जोर देकर अपने-अपने अलग विचार व्यक्त किये हैं। तिब्बत के सवाल पर दोनों देशों ने एक ही पक्ष में मत दिये लेकिन दोनों की व्याख्या में भिन्नता थी। हंगरी के सवाल पर दोनों ने एक दूसरे के विपरीत मत दिये थे। अफ्रो-एशियाई सम्मेलन में रूस को सम्मिलित करने के पक्ष में भारत था लेकिन नेपाल नहीं।

संक्षेप में कहा जा सकता है

'जग देखे मेरी आँखों से वड़ी भूल है,
यह विचार ही हर अनर्थ का महामूल है'

अन्तर्राष्ट्रीय मसलों को हल करने में जहाँ तक संभव होता है दोनों

शों ने एक दूसरे को सहयोग दिया है।

भारत ने अपनी मित्रता की अभिव्यक्ति नेपाल को वित्तीय और प्रावि-
ाक सहायता देकर भी की है। १९५१-५२ ई० में भारत की सहायता से
ाठमाण्डू में गोचर हवाई अड्डा बना और १९५४ ई० में सभी मौसमों के
ाए उपयुक्त और रन वे और एयरटर्मिनल आदि साधनों से सम्पन्न हुआ।
९५७ ई० में ७२ मील लम्बा त्रिभुवन राजपथ निर्मित हुआ जिससे अनेक
ाम स्थान सुगम बने। इस पथ की सुरक्षा का व्यय वहन भी भारत करता
। वह आवश्यकतानुसार इसे चौड़ा करता है, घुमावों को सीधा करता है।
ार अलकतरा बिछाता है। उसने त्रिभुवन विश्वविद्यालय के अनेक भवन
मित कराये हैं। वह स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए नेपाली छात्रों को
ात्र वृत्तियाँ दे कर उन्हें प्रोत्साहित करता है। उसने राष्ट्रीय प्राच्य विद्या-
ान की स्थापना में योग दिया है। उसने लुम्बिनी और काठमाण्डू में
पन्न कार्य कराये हैं। उसने प्राचीन प्रालेखों की फोटो को प्रस्तुत किया है।
के योग से सम्पूर्ण नेपाल का सर्वेक्षण हुआ और औद्योगिक विकास की
ावनायें की। सचित्र धातुओं की खोज हुई। उसने काठमाण्डू में एक अनुसं-
नशाला स्थापित की है। उसने सम्पूर्ण नेपाल का हवाई फोटो ग्राफ ले
योगी नक्शे नेपाल सरकार को दिये। उसने वन-प्रशासन में सुधार लाने
लिए वीरगंज, कंचनपुर और विराट नगर नामक तीन वन-प्रमण्डलों में
ारा कार्य कराये हैं। करा रहा है उसके वरिष्ठ पदाधिकारियों ने नेपाली
पदाधिकारियों को प्रशिक्षित किया है।

उसने नेपाल में पूर्व-पश्चिम राजपथ निर्माण काठमाण्डू से रक्सौल तक टेली-
न की लाइन बिछाने की योजनाओं का कार्यान्वयन किया है। वह नेपाल
सर्वप्रथम मेडिकल कालेज करने जा रहा है। उसने १९६६ ई० तक
ाल की योजनाओं के कार्यान्वयन में लगभग बीस करोड़ रुपये खर्च किये

त्रिभुवन राजपथ के निर्माण से नेपाल के आर्थिक उन्नयन का द्वार खुल
ा है। भारत, अमेरिका और नेपाल के सहयोग से क्षेत्रीय यातायात संगठन
नेम्नलिखित सड़कों का निर्माण आरम्भ किया—(१) रक्सौल-भैंसे
४ मील), (२) सुनौली-पोखरा (१२८ मील) (३) काठमाण्डू-त्रिशूली
० मील), (४) नेपालगंज-सुरखेत (७४ मील), (५) धरान-धनकुट्टा
४ मील), (६) काठमाण्डू-जनकपुर (१३० मील), (७) धनगढ़ी-डडेल

धुरा (८५ मील), और (८) कृष्णनगर-प्यूठान (८० मील) ये सड़कें ३४७ मील तक वनीं कि क्षेत्रीय यातायात संगठन विघटित हो गया। इसके अनन्तर भारत ने उपर्युक्त दूसरी और तीसरी सड़कों की वनावट की जिम्मेदारी स्वयं ग्रहण की। इस सड़क की वनावट में लगभग १४.६ करोड़ रुपये खर्च हुए।

भारतीय सहयोग से अनेक दूसरी सड़कें भी वन रही हैं। १९५७-५८ ई. और १९६२-६३ ई. में भारत ने ककरवा लुम्बिनी नड़क की मरम्मत कराई थी। उसने त्रिपुरेश्वर थानकोट सड़क की भी मरम्मत कराई जो काठमाण्डू को त्रिभुवन राजपथ से मिलाती है। बालाजू सड़क, काठमाण्डू-पाटन सड़क, हनुमान नगर राज विशज सड़क और फतहपुर-कनौली बाजार और बागमती-पुल के लिए भी भारतीय सहायता दी गई है।

भारत की मदद से नेपाल की नहर और जल आपूर्ति परिषद् लगभग पन्द्रह सिंचाई योजनाओं का कार्यान्वियन कर रही है। नौ योजनाएँ पूर्ण हो गई हैं जिनसे चौवालीस हजार एकड़ भूमि सिक्त हो रही है और शेष योजनाओं के पूर्ण कार्यान्वियन से उनसठ हजार एकड़ भूमि सिक्त होगी।

गांवों के सर्वांगीण विकास के लिए भारत ने एक कार्यक्रम चालू किया है उसके अनुसार तेरह ग्राम विकास प्रखण्डों की स्थापना हुई है और केसरा, ललितपुर और पालुंग उपत्यकाओं की अच्छी तरह से तरक्की के लिए अनेक योजनाओं का कार्यान्वियन हो रहा है।

खेती, पशु-पालन और सहकारिता की तरक्की पर खास जोर दिया गया है। वहां चार हजार मन उन्नत बीज, रासायनिक खाद, ऋण आदि दिये गए हैं। नस्ल सुधार के लिए चालीस सांड और हजारों मुर्गे वितरित किये गए हैं अनेक पशु चिकित्सालय खोले गये हैं। ७० प्राइमरी और वारह मिडिल स्कूल स्थापित किये गये हैं। चार हजार ग्राम-सेवक प्रशिक्षित किये गये हैं। नेपाल की ५८१ सहकारिता संस्थाओं में ४१४ सहकारिता संस्थाएं इन तेरह प्रखण्डों में हैं। इन प्रखण्डों के बाहर वाले गांवों की तरक्की के लिए भी भारत ने आर्थिक सहायता दी है।

भारत ने पेय जल आपूर्ति की सत्तरह योजना कार्यान्वित की हैं। वह इस प्रकार की और २४ योजनाओं को कार्यान्वित कर रहा है। उसके सहयोग से नेपाल की योजनाओं के कार्यान्वयन में भारतीय अभियन्ताओं और प्राविधिकों ने कार्य किये हैं। उसने नेपालियों को प्राविधिक प्रशिक्षण दिलाया है। प्राविधिक विद्यालयों और अभियंत्रण महाविद्यालयों में भारत ने नेपाली विद्या-

र्थियों के लिए स्थान सुरक्षित रखा है। मार्च, १९६५ ई. तक १९१० नेपाली छात्र भारत में प्रशिक्षित हुए हैं जिनमें १४०० अपने देश को लौट चुके हैं। भारत ने उनके प्रशिक्षण के लिए नेपाल में भी रूरलइन्स्टीच्यूट, इंजिनियरिंग स्कूल और फारेस्टरी इन्स्टीच्यूट स्थापित किये हैं। इस प्रकार उसने नेपाल की सहायता में कितना व्यय किया है इसका ज्ञान काठमाण्डू स्थित भारतीय सहायता मिशन की विज्ञप्ति से होता है कि मार्च, १९६६ तक भारत ने २२ करोड़ रुपये व्यय किये। इस रकम में पूर्व-पश्चिम राजपथ और अन्य नवीन योजनाओं पर व्यय होने वाले रुपये शामिल नहीं हैं। अतः सिद्ध है कि भारत नेपाल की सर्वांगीण प्रगति का आकांक्षी है। वह उसे सबल-समृद्ध स्वतन्त्र पड़ोसी के रूप में देखने का अभिलाषी है।

मैं बचपन से ही यह पाता हूं कि मेरे तथा प्रत्येक भारतवासी के हृदय में नेपाल और नेपालवासियों के लिए आदर, स्नेह और आत्मीयता की ऐसी त्रिवेणी प्रवाहित रही है कि यह ज्ञात नहीं होता कि भारतीय और नेपाली व्यक्तियों की नागरिकता में भिन्नता है। शायद ही कोई ऐसा दिन आया हो जब दो-चार नेपाली भाई मेरे साथ न रहते हों। उनके साथ हमारा पारिवारिक व्यवहार रहता है। मैं देखता हूं कि भारत के जिस कोने में नेपाली भाई हैं उनके साथ भारतीयों का वैसा ही सम्बन्ध रहता आया है जैसा सम्बन्ध अपने पारिवारिक सदस्यों के साथ। भारतवासी नेपाल नरेश के प्रति भी स्नेह, आदर और आत्मीयता रखते आये हैं तथा नेपाल की उन्नति-सुदृढ़तायें अपनी उन्नति सुदृढ़ता देखते हैं। नेपाल की स्वतन्त्रता और अखण्डता में उनकी स्वाधीनता और अखण्डता सन्निहित है।

"भारत के पड़ोसी देश कई हैं किन्तु सच्चे अर्थों में भाई केवल एक है और वह है नेपाल। हम किसी छोटी व बड़ी बात पर नेपाल को असन्तुष्ट या अप्रसन्न नहीं देखना चाहते। हम नेपाल की प्रसन्नता और सन्तोष के लिए हर संभव एवं समुचित मूल्य देने के लिए कटिबद्ध हैं और सदा रहेंगे। शुभ चिन्तक छोटी मोटी घटनाओं को बढ़ावा देना या उनकी चर्चा चलाये रखना अधर्म मानेगा तथा इसे दोनों देशों के प्रति अन्याय और द्रोह समझेगा।

"दोनों के भौगोलिक, ऐतिहासिक, धार्मिक सांस्कृतिक आदि सम्बन्धों की जड़ें पाताल स्पर्शी हैं और यही आधुनिक सम्बन्धों की बुनियादें हैं। हमें इन्हें और विस्तृत करते रहना चाहिए।"

●

नेपाल का इतिहास

काठमाण्डू सरोवर के रूप में या जिसमें अगणित व्याल रहते थे। बुद्ध जन्म के बाद वर्षों बाद घाटी में चीनी बौद्ध संन्यासियों का पदार्पण हुआ। उन्होंने घाटी के कुछ हिस्से से जल को निष्कासित किया। तब काठमाण्डू घाटी में लोग रहने लगे।

सर्व प्रथम घाटी के राज्य संचालक थे माता तीर्थ वंशीय नरेश। उन्होंने 'नेपाल' नामकरण किया। उपर्युक्त वंश के उपरान्त अहीर वंश ने वहां शासन किया। नेपाली सभ्यता के अंग्रेज किरात थे जिन्होंने सैकड़ों वर्षों तक राज्य संचालन किया। उनके उपरान्त नेपाल के शासक थे सोमवंशीय नरेश। इस वंश के प्रथम नरेश थे निमिष। उन्होंने किरात कुलीन नरेश गस्ती को पराजित किया था। सोमवंश के अन्तिम नरेश थे भास्कर वर्मा। वे निःसन्तान मर गये।

प्रथम से आठवीं शताब्दियों तक घाटी के शासक थे लिच्छवीय वंश नरेश। तेरहवीं शताब्दी में शासक थे मल्लवंशीय नरेश। इसके प्रथम नरेश अरिदेव थे और द्वितीय थे अभयदेव जिनके दो पुत्र थे—जयदेव मल्ल और आनन्द मल्ल। जयदेव मल्ल काठमाण्डू और पाटन के शासक हुए और आनन्द मल्ल घाटी से भात गांव के। मल्ल वंशीय नरेशों ने अठारवीं शताब्दी तक नेपाल में शासन किया।

१६०० ई. के आसपास गोरखनाथ का मन्दिर निर्मित हुआ काष्ठमण्डप या काष्ठ मन्दिर के रूप में जिससे कालान्तर में घाटी का नामकरण काठमाण्डू के रूप में हुआ।

पन्द्रहवीं शताब्दी में राजपूतों की एक शाखा नेपाल में बसी। इस वंश के पृथ्वी नारायण शाह ने काठमाण्डू, पाटन और भात गांव पर अपना अधिकार जमाया। उन्होंने १७७२ ई. में विशाल नेपाल का निर्माण किया। वे वस्तुतः नेपाल के आधुनिक निर्माता थे। उनके पूर्वज भूपाल रंजिवराव सब से पहले रिडि में बसे और कालान्तर में भिरकोट जिले के खिलुम नामक स्थान पर। उनके दो पुत्र थे—कांछा खां और मिच्चा खां। पहले ढोर के शासक हुए और दूसरे नुवाकोट के। उनके वंशजों ने अपने राज्यों का विस्तार किया।

इस वंश के प्रतापी राजकुमार श्री द्रव्यशाह गोखा प्रदेश के शासक हुए। उनके जनक यशोब्रह्म शाह थे जो लमजुंम प्रदेश के शासक थे। द्रव्यशाह ने १५५६ ई. से १५७० ई. तक राज्य विस्तार कर शासन किया। उनके बाद पुरन्दर शाह शासक हुए और ३६ वर्षों तक शासन की बागडोर संभाली। उनके पुत्र छत्रशाह ने आठ महीनों तक शासन किया और मर गये। तब छत्रशाह के चाचा और पुरन्दर शाह के अनुज रामशाह गद्दी पर बैठे। वे प्रतापी थे। उन्होंने लमजुंग के राजा को हराया, शासन में अनेक सुधार किये और राज्य विस्तार भी किया। उनके पुत्र थे डम्बरशाह जो राज्याधिकारी हुए। उनके बाद रूद्रशाह और पृथ्वीपतिशाह गद्दी पर बैठे। उनके उपरान्त पृथ्वीशाह के पौत्र नरभूपाल शाह सन् १७१६ ई० में गोरखा राज्य के अधिकारी हुए। वे १७४२ ई० में मरे। उनके पुत्र थे पृथ्वीनारायण शाह। वे तेरह वर्षो की अवस्था में गद्दी पर बैठे। उन्होंने नेपाल राज्य का विस्तार किया और काठमाण्डू को शासन का केन्द्र बनाया। उनकी उक्ति थी कि मेरा राज्य चारों वर्णों और छत्तीस जातियों की फुलवारी है। यह उक्ति आज भी राष्ट्रीयता की आधार शिला मानी जाती है। वे बहुत वीर थे। वे शेर से मल्ल-युद्ध करते हुए सन् १७७४ ई० में स्वर्गवासी हुए।

उनके उत्तराधिकारी थे सिंह प्रताप शाह जिन्होंने १७७४ ई० से १७७७ ई० तक शासन किया। उन्होंने उपरदांग गढ़ी और चितवन पर अधिकार जमाया और २७ वर्षों की अवस्था में ही स्वर्गवासी हुए। काठमाण्डू घाटी की विख्यात 'इन्द्र यात्रा' (विख्यात मेला) उनके शासन काल में ही शुरु हुई १७७७ ई० में रणबहादुर सिंहासनारूढ़ हुए किन्तु वे बालक थे। इसलिए उनके चाचा बहादुर शाह रिजेन्ट हुए और शासन करने लगे। उन्होंने तिब्बत और सिक्किम पर आक्रमण किया और चीन के आक्रमण का सामना किया। १७९५ ई० में रणबहादुर शाह ने शासन का भार स्वयं ग्रहण किया और कांगड़ा पर आक्रमण किया। वे भावुक, न्याय प्रिय, धार्मिक, सुधारक और अपव्ययी थे। उनके पांच पत्नियाँ थीं। पहली पत्नी के कोई सन्तान न हुई। दूसरी पत्नी के रणोद्वत नामक पुत्र हुआ। चौथी पत्नी का नाम कान्तिमति था। उसके गीर्वाण युद्ध विक्रम नामक पुत्र हुआ। ललिता त्रिपुर सुन्दर पाँचवी पत्नी थी।

रणबहादुर शाह ने गीर्वाण युद्ध विक्रम का राज्य तिलक कराया और शासन का भार प्रधान मन्त्री भीमसेन थापा को सौंपा। वे कांतिमति की मृत्यु के उपरान्त विक्षिप्त भी हो गये थे। उनके खिलाफ जब प्रथम बार जन

विद्रोह हुआ तब वे त्रिपुर सुन्दरी और भीमसेन थापा के साथ बनारस में प्रवासी हुए। कुछ दिनों के उपरान्त वे पुनः काठमाण्डू लौटे।

गीर्वाण युद्ध विक्रम ने सतलज नदी के तट पर राज्य विस्तार किया। वे अंग्रेजों से कई बार टकराये। उनके शासन काल में ही भारत और जापान के बीच सुगौली का समझौता हुआ। वे नवम्बर १८१६ ई० में स्वर्ग सिधार गये। तब राजेन्द्र विक्रम शाह दो वर्षों की अवस्था में गद्दी पर बैठे। प्रधान मन्त्री भीमसेन थापा ही थे जो वृद्ध हो गये थे। इसलिए रानी त्रिपुर सुन्दरी ने शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली। राज दरबार विभिन्न षड्यन्त्रों का अड्डा बना। राजेन्द्र विक्रमशाह कमजोर राजा थे। उनकी छोटी रानी लक्ष्मी देवी अपने पुत्र को गद्दी पर बिठाना चाहती थी। इसलिए राणा राजेन्द्र के प्रधान मन्त्री मातवरसिंह के भतीजे जंगबहादुर ने अपने चाचा और अनेक सामन्तों की हत्या कर दी और लक्ष्मी देवी को कहा कि वे रानी को गद्दी से हटाना चाहते थे। अतः रानी लक्ष्मी देवी ने जंगबहादुर को प्रधान मन्त्री नियुक्त कर लिया। जंगबहादुर ने राजा राजेन्द्र को गद्दी से उतारा और सुरेन्द्र विक्रम शाह को गद्दी पर बिठाया। उन्होंने सुरेन्द्र विक्रम शाह से राजा के लिए श्री ५ महाराजाधिराज और प्रधान मन्त्री के लिए श्री ३ महाराजा की पदवी का एलान कराया, प्रधान मन्त्री के लिए प्राणदण्ड देने या क्षमा करने, नियुक्ति या पद च्युति करने और विदेशों से सम्पर्क कायम करने के हक सुरक्षित कराये तथा अपने कुल के लिए श्री ३ महाराजा की पदवी हासिल कर ली। उन्होंने १८५७ ई० में अंग्रेजों की खूब मदद की जिससे अंग्रेजों ने उन्हें अवध की तराई सौंपी। भारत के लार्ड कैनिंग ने उनके बारे में कहा था—"मुझे इस बात का सन्तोष है कि मैं आज भरे दरबार में महाराजा जंगबहादुर और उनके बहादुर सिपाहियों द्वारा भारत सरकार को दी गई मदद के लिए उनके प्रति धन्यवाद ज्ञापित कर रहा हूं। मैं यह आश्वासन देता हूं कि उनकी सरकार का यह मित्र-वत् व्यवहार उनके सैनिकों के प्रयत्न और सफलता साभार स्मृत रहेंगे—भारत से इंगलैण्ड में किसी कम महत्व और कृतज्ञता के साथ नहीं।"

जंगबहादुर ने इंगलैण्ड और फ्रांस का सफर भी किया था। उन्हें अपनी शक्ति की सुदृढ़ता में चूंकि अपने भ्राताओं से पूरी सहायता प्राप्त हुई थी, इसलिए उन्होंने नियम घोषित किया कि प्रधान मंत्री के भ्राताओं को भी कई हक हासिल रहेंगे—यहां तक कि वे प्रधान मंत्री का पद भी पा सकेंगे। १८८५ ई० में जंगबहादुर के भ्राता और उत्तराधिकारी की हत्या हुई। अब

जंगबहादुर के अनुज वीर शमशेर प्रधान मंत्री बने और पन्द्रह वर्षों तक अपने पद पर रहे। उनकी दो पुत्रियों का परिणय-बन्धन तत्कालीन महाराजाधिराज पृथ्वी वीर विक्रम के साथ हुआ।

२६ जनवरी, १९०१ ई० को चन्द्र शमशेर ने देव शमशेर को, जिन्होंने प्रधान मंत्रित्व का भार केवल तीन महीनों तक ही सँभाला था, अपदस्थ किया और स्वयं प्रधान मंत्री बने। उन्होंने महाराजाधिराज को प्रशासन और प्रजा से पृथक् रखने की नीति में सफलता प्राप्त की। उन्होंने १९०३ ई० में दिल्ली में आयोजित दरबार में हिस्सा लिया नेपाल-प्रतिनिधि के रूप में और १९०४ ई० में लार्ड कर्जन से मुलाकात की। उन्होंने नेपाल का सम्बन्ध ब्रिटिश सरकार से मजबूत किया। १९०८ ई० में वे जब इंगलैण्ड गये तब एडवर्ड सप्तम ने उनका स्वागत कर उन्हें अनेक उपाधियों से अलंकृत किया। उन्होंने अनेक यूरोपीय देशों की सैर की थी।

महाराजाधिराज पृथ्वी वीर विक्रम शाह १९११ ई० में स्वर्गवासी हुए। उनके पुत्र त्रिभुवन वीर विक्रम शाह का जन्म ३० जून, सन् १९०६ ई० में हुआ था। उनकी जननी का नाम था महारानी लक्ष्मी देवी जो भारत के हिमाचल प्रदेश के ठाकुर श्रीमान मोतीसिंह की आत्मजा थी।

महाराजाधिराज त्रिभुवन वीर विक्रम शाह छह वर्षों की अवस्था में गद्दी पर बैठे; ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार उनके पिता छह वर्षों की अवस्था में १ दिसम्बर, १८८१ ई० में सिंहासनारूढ़ हुए थे।

महाराजाधिराज त्रिभुवन वीर विक्रम शाह का विवाह चौदह वर्षों की अवस्था में भारत के विख्यात राजपूत ठाकुर अर्जुनसिंह की दो आत्मजाओं—कान्ति राज्य लक्ष्मी देवी और ईश्वरी राज्य लक्ष्मी देवी के साथ हुआ। उनके तीन पुत्र हुए—सन् १९२० ई० में युवराज श्री महेन्द्र वीर विक्रम शाह, सन् १९२५ ई० में द्वितीय अधिराजकुमार श्री हिमालय वीर विक्रम शाह सन् १९२७ ई० में तृतीय अधिराजकुमार श्री वसुन्धरा वीर विक्रम शाह। तीन पुत्रों के सिवा उनके चार पुत्रियाँ भी हुईं।

महाराजाधिराज त्रिभुवन वीर विक्रम शाह ने ४३ वर्ष, तीन महीने और तीन दिन तक राज्य किया। इस अवधि में पाँच राणा प्रधान मंत्री हुए और उनके राज्य काल में ही स्वेच्छाचारी-दमनकारी-निरंकुश राणा-प्रधान मंत्री का अस्तित्व खत्म हो गया। उनकी सारी जिन्दगी संघर्ष में गुजरी लेकिन वे हर बार सफलता प्राप्त कर लेते थे। ईश्वर की उन पर अपार कृपा थी।

राणाओं ने नेपाली जनता पर जो अमानुषिक अत्याचार किये वे मानवता के इतिहास में काले धब्बे हैं। लेकिन लाला लाजपतराय, बाल गंगाधर तिलक, विपिन विहारी पाल आदि भारतीय नेताओं ने जागृति का जो शंख भारत में फूंका उससे नेपाली जनता भी जाग गयी। नेपाल नरेश पृथ्वी वीर विक्रम शाह ने राणाओं को नष्ट करना चाहा किन्तु सफल नहीं हुए। भारतीय जागरूकता से नेपाली जनता प्रेरित होती थी और प्रजातंत्र की स्थापना के लिए कमर कस चुकी थी। भारत में लगान बन्दी का जो आन्दोलन चला था उसमें तराई क्षेत्र के नवयुवकों ने भी भाग लिया था। कुछ व्यक्तियों ने धर्म प्रचार के बहाने राजनीतिक प्रचार भी करना आरंभ किया था। गांधी, मदन मोहन मालवीय, रफी अहमद किदवई, जयप्रकाश नारायण, शिब्बनलाल सक्सेना आदि से तराईवासियों का सम्बन्ध बढ़ रहा था। राणाओं ने नेपाल में अविराम गति से दमन-चक्र चला रखा था। १९३६ ई० में स्थापित 'प्रजा परिषद' के सभी कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार किया जाने लगा १८ अक्टूबर १९४० ई०। दशरथ चन्द्र, धर्मभक्त, शुक्र राजशास्त्री और गंगालाल की निर्ममतापूर्वक हत्या कर दी गयी हालांकि त्रिभुवन वीर विक्रम शाह ने कहा था कि उन पर जनता के सामने न्यायालय में निष्पक्ष रूप में मुकदमा चलाया जाये। अनेक व्यक्तियों पर अनेक प्रकार के अत्याचार किये गये। २४ सितम्बर १९५० ई० में जब राणा सरकार ने गणेशमानसिंह, तोरण शमशेर, दिलमान सिंह, सुन्दर लाल चालिसे आदि को मृत्यु-दण्ड देना चाहा तब नरेश त्रिभुवन ने अपनी स्वीकृति नहीं दी क्योंकि वे राणाओं के एक तंत्रीय शासन के दमन से दुःखी थे, जन-जागरण के समर्थक थे और जनता को उचित हक देने के पक्षधर थे। प्रधान मंत्री मोहन शमशेर ने नरेश पर कड़ा पहरा विठाया। लेकिन नरेश त्रिभुवन ने ६ नवम्बर, १९५० ई० में शिकार खेलने के बहाने भारतीय राजदूतावास में शरण ले ली। इसका असर जनता पर जोरदार पड़ा—पुरानी राज्य व्यवस्था की नींव हिल गयी महाराजाधिराज सपरिवार दिल्ली आये। कुछ दिनों के बाद जनता की पुकार हुई। जनता अपने देव तुल्य महाराजाधिराज के दर्शन को इच्छुक हुई। जनता के आह्वान पर वे सपरिवार अपनी पुण्यभूमि में गये। अन्तिम राणा प्रधान मंत्रित्व को सदा के लिए हटना पड़ा। महाराजाधिराज त्रिभुवन ने अपनी कर्मठता-बुद्धिमत्ता-दूरदर्शिता और चातुर्य-राजनीतिज्ञता से जनता को एक नयी रोशनी दी। उनका जयकार चारों ओर व्याप्त था। उनके हृदय में जनता के लिए जिस प्रकार का निश्छल और निष्कलुष प्यार-सत्कार था, जनता के हृदय में भी उनके प्रति

उसी प्रकार का भाव था। वे जनता के हृदय-सम्राट् थे। १८ फरवरी, १९५० ई० में श्री मोहन शमशेर के नेतृत्व में अन्तरिम सरकार के मंत्रिमंडल की स्थापना के साथ उनकी जो उद्‌घोषणा हुई वह लोकतंत्रीय शासन-व्यवस्था की ओर प्रथम कदम थी। नेपाल में प्रतिवर्ष इस तिथि को राष्ट्रीय दिवस समारोह के साथ मनता है। महाराजाधिराज त्रिभुवन राष्ट्रपिता कहलाते हैं।

राणा-प्रधान मंत्रित्व काल में कठोर नियंत्रणों के बावजूद वे बहुचर्चित नवीनतम पुस्तकें खरीद लेते थे। वे विद्या-व्यसनी थे। वे साल में एक बार चिकित्सा कराने के लिए कलकत्ता जाते थे। प्रधान मंत्री की स्वीकृति पाने पर ही वे यात्रा की तैयारी करते थे। उनके बक्से और सन्दूक खोले नहीं जाते थे। किन्तु तोले जाते थे। जब वे वापस होते थे तब भी उनका वजन तोला जाता था। महाराधिराज अपने बक्सों में ईंट पत्थर भरवा लेते थे और कलकत्ते में उनके वजन के बराबर पुस्तकें आदि खरीद लेते थे। वे १४ मार्च, १९५५ ई० में स्वर्गवासी हुए थे।

वर्त्तमान नेपाल-नरेश का राज्याभिषेक २ जून, १९५६ ई० में हुआ था। उनका प्रथम विवाह तत्कालीन प्रधान मंत्री महाराज युद्ध शमशेर जंग बहादुर राणा की पुत्री इन्द्र राज्य लक्ष्मी से हुआ था जिनके छह सन्तानें हुईं। १९ सितम्बर, १९५० ई० में इन्द्र राज्य लक्ष्मी का स्वर्गवास हो गया। तब उनकी छोटी बहन रत्न राज्य लक्ष्मी से उनका दूसरा विवाह हुआ।

वे अल्पभाषी हैं। वे प्रकृतितः शान्त, विनम्र, सरल और मिष्टभाषी हैं। उनकी वेशभूषा आडम्बर-रहित होती है। वे स्वभावतः कवि हैं लेकिन वातावरण उन्हें राजनीति में खींच लाता है। उनका व्यक्तित्व हिमालय की तरह अडिग-उत्तुंग है। जिस प्रकार हिमालय अपने अंचल के समस्त ताप को दूर करने वाली अनन्त शीतलता सँजोये हुए निर्विकार रूप में स्थित है उसी प्रकार उनका व्यक्तित्व नेपाल के समस्त पाप-ताप का विनाशक है। हिमालय की तरह ही उन्होंने अपने अतीत मानसिक जीवन में कितनी ज्वालाएँ, कितने मंथन, कितने कर्षण-विकर्षण और कितने उत्प्लावन झेले हैं, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। हिमालय बाह्य रूप से शान्त-शीतल है लेकिन उसके भीतर तपा-तपा कर कंचन में परिणत करने वाली उद्दाम ऊष्मा निहित है। जो हिमालय अनन्त नैसर्गिक अवरोधों को तोड़-फोड़ महाकाल के वरदान से पाताल चीरता हुआ आकाश में उभर आया है, क्या मानव के अहंकार से नमित हो सकता है? उसका इतिहास बनता जा रहा है। नरेश का इतिहास भी उसके

समान विश्वविख्यात होता जा रहा है।

महत्ता मस्तिष्क से नहीं हृदय से उद्भूत होती है। नरेश के व्यक्तित्व के अप्रतिम आकर्षण का मूल कारण हृदय की समरसता ही है। अपने पूज्य पिता कि स्वर्गारोहण पर श्राद्ध क्रिया में स्वयं बैठना, तेरह दिनों तक जमीन पर पुआलपर सोना, परम्परानुसार अपने हाथों से जल ढोकर लाना और अपने हाथों से भोजन पकाना—यह साधारण आदर्श की स्थापना नहीं है। हर हिन्दू अपने हिन्दू राजा से यही आशा करता है। वस्तुतः वे पहले हिन्दू हैं और तब राजा। वे पहले मनुष्य हैं और तब हिन्दू राजा। उनके माता-पिता अपने सुयोग्य कर्त्तव्यपरायण सुपुत्र से यही आशा करते होंगे।

श्री महेन्द्र वीर विक्रम शाह श्रममय जीवन बिताते हैं। वे लगातार छह घण्टों तक बैठकर कार्य करते रहते हैं। वे कार्य-कुशलता का रहस्य अच्छी तरह से जानते हैं। वे सच्चे कर्मयोगी हैं, हिन्दू राजनीति के आदर्शों के ज्ञाता हैं। अपने मन की बातें छिपाये रखना और दूसरों की सुनते जाना—यह भी राजनीतिज्ञता है और इसमें वे पूर्ण निष्णात हैं। उनके विचारों में सुलझापन है। वे शरीर से संयमी हैं। वे सुरुचिसम्पन्नता के कायल हैं। उनके पारिवारिक और सामाजिक जीवन में राम का जीवनादर्श दृष्टिगोचर होता है। राम के नामोच्चारण से वे दिवसारंभ करते हैं। रामके समान ही वे वज्र की तरह कठोर हैं और फूल की तरह मृदु भी। स्वजन-परिजन-पुरजन सबके साथ उनका सम्बन्ध स्नेह प्रेमपूर्ण है। वैयक्तिक जीवन में वे आस्तिक हैं और परम्परापालन को अपना धर्म मानते है। प्रजा-पालन में वे अपना सर्वस्व त्यागने को कटिबद्ध रहते हैं। वे समाज-राष्ट्र की सर्वांगीण प्रगति में अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को उत्सर्ग कर देना अपना कर्त्तव्य मानते हैं। संक्षेप में वे मर्यादित जीवन-निर्वाह में राम की, करुणामयी दृष्टि में अशोक की, कठोर संयमित जीवन-यापन सहित अचल धैर्य से प्रतिज्ञापालन में राणाप्रताप की और धार्मिक आस्था समर्पण एवं हिन्दू राष्ट्र के निर्माण के संकल्प में शिवाजी की याद दिलाते हैं।

विकट से विकट परिस्थिति का सामना करने एवं बुद्धिमत्तापूर्ण समाधान ढूंढ़ने की जो अपूर्व क्षमता उनके भी असाधारण रूप में है।

जिस प्रकार शिव का उर हिमालय है उसी प्रकार हिमालय का उर नेपाल है और उसकी आत्मा नेपाल-नरेश महाराजाधिराज महेन्द्र हैं। यहाँ त्रिदेव हैं जिनके तीन रंग, तीन आयतन और नर-रूप में तीन प्रतिमाएँ हैं। ब्रह्मा, शिव और विष्णु—ये त्रिदेव नेपाल में क्रमशः स्वयंभूनाथ, पशुपतिनाथ

और मत्स्येन्द्रनाथ के तीन आयतनों में प्रतिष्ठित हैं। ये ही तीन क्रमशः ज्ञान, कल्याण और सृजन के विधाता हैं। ये तीन तत्त्व क्रमशः नील, काषाय और सघन हरित रंगों के प्रतीक में व्यवस्थित हैं। ये ही क्रमशः चन्द्र, शिव और सूर्य और सत्, चित् तथा आनन्द हैं। प्राचीन काल में अन्य महापुरुष रहे होंगे। इस आधुनिक काल में नर-रूप में प्रतिनिधि महाराजाधिराज पृथ्वी-नारायण शाह, भानुभक्त और महाराजाधिराज श्री महेन्द्र वीर विक्रम शाह कहे जा सकते हैं।

नेपाल की जातियाँ : अतीत गौरव

किसी काल में नेपाल 'चार वर्णों और छत्तीस जातियों की फुलवारी' था। किन्तु आज वह केवल नेपालियों की फुलवारी है। विभिन्न जातियों के रूप रंग और आचार-विचार में बाह्य रूप में भेद है किन्तु आन्तरिक रूप में अभेद है। द्रविड़, आर्य, तिब्बती और चीनी—चारों में पहले यहाँ कौन बसे, यह बात विवादमयी है। एक मत है कि सबसे पहले भारत से लोग आ कर यहाँ बसे। दूसरा मत है कि सर्वप्रथम चीन से 'मंजुश्री' आ कर बसे। किन्तु नेवार जाति भी बहुत पहले बसने वाली जातियों में है जो एक ओर मंगोलियन आचार-विचार को मान्यता देती है और दूसरी ओर भारतीय आचार-विचार और प्रथाओं को भी।

नेपाल में हर जाति की अनेक उपजातियाँ हैं। पश्चिम में गुरुंग और मगर, दक्षिण में थारू, उत्तर में मोटिया या शेरपा, पूर्व में किरान्ती और लिम्बू तथा मध्य में नेवार, गोरखा तमांग जातियाँ हैं। किरान्ती के वंशज हैं खम्बा, यक्ष और लिम्बू। लिम्बू के प्रमुख को सुब्बा की उपाधि मिली और खम्बा के प्रमुख को राई की। दोनों जातियों में रोटी-बेटी का सम्बन्ध कायम हो गया। दोनों की बोलियों में भी समानता आ गयी है। पूर्वी क्षेत्र में इन जातियों की अनेक उपजातियाँ हैं।

नेवार जाति कला, दस्तकारी, व्यापार और उद्योग में हाथ बँटाती रही है। इसने अपनी कला-कृतियों में धार्मिक सहिष्णुता को प्रधान स्थान दिया है। इसके रिवाज पुराने हैं। यह आरंभ में बौद्ध थी और प्रजातंत्र में आस्था रखती थी। इसमें अछूत नहीं थे। यह वैशाली सभ्यता से प्रभावित थी। कालान्तर में यह हिन्दू धर्म से प्रभावित हो गयी। इसमें ब्राह्मण की श्रेष्ठता मान्य हुई। इसकी पहली शाखा धर्म-प्रचार और पूजन कार्य सम्पन्न कराती है और दूसरी शाखा स्वर्ण-चाँदी का काम करती है। भारत के दक्षिण कर्णाटक के राजा न्यायदेव सन् १०८९ में नेपाल में बसे थे।

नेवार जाति में साहित्य-प्रेम है। इसके विद्वान् संस्कृत में रचनाएँ लिखते थे। दक्षिणी भारत के नायर परिवार इसके पूर्वज माने जाते हैं।

दक्षिणी भाग में और पूर्व में मेची से पश्चिम में महाकाली तक, थारू जाति बसी है। इसने क्षेत्रीय रहन-सहन और भाषा को अपनाया। इसकी जनसंख्या पन्द्रह लाख है। इसकी आजीविका कृषि है। यह पिछड़ी और शोषित जाति रही है। यह कृषि का मेरू दण्ड है। इसने वन उजाड़ परती जमीन को खेती के लायक बनाया है। इसने प्रकृति से संघर्ष किया है। यह अपनी जरूरत की सारी चीजें स्वयं पैदा करती है जिसका नतीजा यह होता है कि अन्य जरूरत की चीजें खरीदने के लिए इसके पास अनाज नहीं होता। इस लिए यह परिश्रमी है पर सुखी नहीं है। यह व्यापार-पटु नहीं है। अनाज से अन्य चीजें खरीदने में यह जाति ठगी जाती है। इसमें शिक्षा का अभाव है। इसमें कतिपय कुटीर उद्योग भी अपनाये हैं। यह प्रकृतितः संकोची होती है।

तराई में धीमाल और भील जातियां भी हैं और ब्राह्मण, ग्वाला, राजपूत, कायस्थ और मुसलमान भी। ये लोग निकटवर्ती भारतीय क्षेत्र की बोलियां बोलते हैं और भारतीय क्षेत्रों के लोगों से रोटी-बेटी का सम्बन्ध भी रखते हैं। ये प्रधानतः मैथिली, भोजपुरी और अवधी बोलते हैं।

गोरखा के कई भेद हैं—खस, ठकुरी, गुरुंग, राई, लिम्बू और मगर। खस क्षत्रिय हैं जिनकी बारह उपजातियां हैं—थापा, बस्नेत, कुंवर, पाण्डेय, विष्ट आदि। खस का सम्बन्ध गोरखानगर से है।

ठकुरी का सम्बन्ध राजघराने से है। यह शूर-वीर है और कुशाग्रबुद्धि भी। इसकी उपजातियां हैं—शाह, शाही, मल्ल, खान और चान। गुरुंग और मगर की सभ्यता-संस्कृति में समानता है। पश्चिमी सीमा के आस-पास दोटिया जाति रहती है।

मगर जाति की छह शाखाएँ हैं जिनमें राणाओं का सामाजिक स्तर सर्वोच्च है, अपनी शाखाओं में ही नहीं वरन् नेपाल की सम्पूर्ण जातियों में।

गुरुंग और मगर जातियां मंगोलियन परिवार की है। पहली ने पहाड़ी प्रदेश पर निवास बनाया और दूसरी ने समतल जमीन पर। थकाली जाति व्यवसायी है। शेरपा जाति चोटियों पर चढ़ने और भार ढोने में दक्ष है। इसकी कई शाखाएँ हैं—थका, काठभोटिया और रंगपा जो दलाई लामा को धर्मगुरु के रूप में स्वीकारती है।

काठमाण्डू के आसपास कुछ पेशेवर जातियां हैं—मुरमी, वायु, सुनपार, सुनवार, कुसुण्डा, थामी, माझी, धनुआर आदि। केपांग और कुसुन्डा खानाबदोश जाति हैं और जड़ी-बूटियां बेचती हैं। सुनवार की तीन शाखाएँ

हैं—जेठा, मैला और कांछा। जेठा की दस उपजातियाँ हैं जो बौद्ध हैं। मैला हिन्दू है। सुनवार, मगर और गुरुंग में आचार-विचारगत समता है।

मुरमी शैव है जिसकी दो उपजातियाँ हैं। लेपजा बौद्ध है। सब जातियों में नेपाली राष्ट्रीयता है।

वत्स क्षत्रिय नरेश उदयन महात्माबुद्ध के समकालीन थे और मगध नरेश विम्वसार के दामाद थे। उनकी राजधानी थी इलाहाबाद जिले का 'कौसम' गाँव जिसे 'कौशम्बी' कहते थे। गंगा-यमुना के बीच के दक्षिणी जिलों को आज भी 'बैसवाड़ा' कहते हैं। 'वत्स' का एक तद्भव 'वैस' भी है। विष्ट क्षत्रिय वत्स राज उदयन के सगोत्र प्रतीत होते हैं।

१७२६ ई० में महाराजाधिराज श्री पृथ्वीनारायण शाह देव ने कामना की थी कि नेपाल चार वर्णों और छत्तीस जातियों की फुलवारी हो—सभी लोग फूलें-फलें और आनन्द से जीवन बितायें। श्री महाराजाधिराज महेन्द्र ने भी उनके समान ही पशुपतिनाथ से कामना की है—"सबै नेपाली मेरो लागि बरावर छन् र सबै नेपाली को कल्याण मा नै आपनो कल्याण संभझन्दु।"

नेपाल में चौबीस हजार फुट और उससे अधिक ऊँचाई वाले ५१ पहाड़ हैं जिनमें एवरेस्ट (सगरमाथा) संसार में सर्वोच्च है जिस पर तेनसिंह शेरपाने अपने दो अन्य सहयोगियों के साथ विजय प्राप्त की थी। इस विजयोल्लास में भारतीय कवि और मेरे अभिन्न मित्र श्री लक्ष्मी नारायण शर्मा 'मुकुर' ने एक लम्बी कविता रची थी और पटना रेडियो स्टेशन से उसे प्रसारित किया था। 'कंचन जंघा' २८१४६ फुट ऊँचा है। जो लोग दार्जीलिंग जाते हैं, उपर्युक्त दोनों पहाड़ों को जरूर देखते हैं। सिली गुड़ी से आगे बढ़ते ही रास्ते से ये दिखलायी पड़ते हैं। मैं सन् १६३६ ई० में डा० लक्ष्मी-नारायण 'सुधांशु' के साथ हिमाचल हिन्दी भवन के उत्सव में दार्जिलिंग गया था और कंचन जंघा को देखा था। कालान्तर में दोनों पहाड़ हजार बार देखे हैं। उनकी भव्यता अवर्णनीय है।

नेपाल भारतीय हिन्दुओं की देव भूमि है। भारतीय हिन्दुओं पर जब-जब संकट आते थे, वे नेपाल में शरण लेते थे। १८५७ ई० में नाना साहब आदि वीरों ने नेपाल में शरण ली थी। सन् १६४२ ई० में श्री जयप्रकाश नारायण आदि देश भक्तों का आश्रयस्थल नेपाल ही था। हमारे अनेक आराध्य पुरुषों की जन्मभूमि नेपाल है। जनकपुर में सीता, हेलम्बु में हेरम्ब

माता पार्वती एवं लुम्बिनी में बुद्ध पैदा हुए थे। पंचपोखरी में विश्वामित्र, गंडकीमण्डल में भारद्वाज और शृंगीऋषि, भैंसा लोटन में वाल्मीकि, जुमला में व्यास, कृष्ण कौशिकी के अंचल में याज्ञवल्क्य, गौतम और कपिल तथा वभंग में मनु के आश्रम थे। वहाँ कृष्ण, राम, मंजुश्री, पद्मसंभव, अशोक, नागार्जुन, दिङ्नाग, मत्स्येन्द्रनाथ, शान्ति रक्षित, शंकराचार्य, गोरखनाथ सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' 'दिनकर' आदि का शुभागमन, हुआ है।

पंचायती शासन

नेपाल में पंचायती शासन है। २१ वर्षों से ऊपर अवस्था वालों को पंचायत के सदस्य बनाने का अधिकार प्राप्त है।

प्रथम राष्ट्रीय पंचायत इस आधार पर गठित हुई कि इसमें १२५ सदस्य होंगे जिनमें ८० अंचल सभाओं से, १५ सदस्य वर्गीय-व्यावसायिक संगठनों से, ४ सदस्य स्नातकों द्वारा निर्वाचित और १६ सदस्य महाराजाधिराज महेन्द्र द्वारा मनोनीत होकर आयेंगे।

पंचायत के विभिन्न स्तर हैं—ग्राम पंचायत, नगर पंचायत, जिला पंचायत और अंचल पंचायत प्रशासन की पूरी जिम्मेदारी मंत्रि-परिषद् पर है जिसके पूरक के रूप में राष्ट्रीय योजना परिषद् और राष्ट्रीय निर्देशन परिषद् हैं। राष्ट्रीय निर्देशन परिषद् आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि सुझावों से योजना परिषद् और मंत्रि-परिषद् को अवगत कराती है यानी जनता और महाराजाधिराज के सम्पर्क को बनाये रखती है। एक राज्य-सभा, न्यायपालिका और जन-सेवा आयोग की भी स्थापना हुई। मंत्रि-परिषद् २ अप्रील, १९६३ ई० में गठित हुई और राष्ट्रीय पंचायत १४ अप्रील, १९३२ ई० में उद्घाटित हुई।

अब पानी, नहर, बाँध और कुला (खोला) सम्बन्धी विवादों का निर्णय ग्राम पंचायत करती है। राजा की आज्ञा के विना किसी को भूमि प्राप्त नहीं होती लेकिन सीमा विवाद ग्राम पंचायत निपटाती है।

अब 'माना' (एक बर्तन जिसमें आधा सेर अनाज अँटता है), 'पाथी' (चार सेर), 'धानी' (तीन सेर) और 'मुरी' (दोमन) की नाप प्रामाणिक मानी जाती है। वहाँ ये कानून-नियम मान्य हैं—

१. लोग मुकदमों में सचाई की पुष्टि में शालग्राम की मूर्ति लेकर शपथ ग्रहण करते हैं। पंच जिस स्त्री को 'कुट्टनी घोषित करते हैं उसे गाँव से निकाला जाता है। जो व्यक्ति मुकदमा जीतने के लिए हाकिमों को वश में करने की कुचेष्टा करते हैं उन्हें निष्कासन दण्ड मिलता है।

२. दस वर्षों के बाद कर्जदार महाजन को मूलधन और व्याज मिलाकर

अधिक से अधिक दुगनी रकम चुकाते हैं। अनाज का ऋण दस वर्षों बाद तिगुने अनाज द्वारा चुकाये जाते हैं।

३. वन गोचर और सड़क पर लगे पौधों को हानि पहुँचाने वाले को पाँच रुपये का जुर्माना होता है।

४. हत्या करने वाले 'चौतरिया' और सगोत्र भाइयों को निर्वासन दण्ड मिलता है। इस अपराध में संन्यासी-ब्राह्मण और भाटों का सिर मुण्डित कर उन्हें देश से निकाला जाता है। बाकी सभी लोग इस अपराध में प्राण-दण्ड के भागी होते हैं।

महाकवि महाराजाधिराज नेपाल-नरेश

कविवर महाराजाधिराज नेपाल-नरेश श्री ५ महेन्द्र विक्रमशाह की कविताओं के संकलन का नाम है, उसै को लागि [उसी के लिये]। ये कविताएं स्वर-लय-ताल छन्द से बद्ध हैं। इनकी संख्या ७५ हैं। इनमें गीति-काव्य के सर्व विशिष्ट गुण वर्तमान हैं। इनमें माधुर्य है, गेयता है और सन्तुलनमयी क्षिप्रता है। इनमें भागवत सुम्बद्धत्ता है, सुस्थिरता है और है स्वानुभव को गहन तीव्रगामिता। इनमें वर्णन-शैलीगत मार्मिकता है।

इनमें तीन धाराएं स्पष्ट रूप में परिलक्षित होती हैं। पहली धारा है प्रेम की जिनके दो रूप दृष्टिगोचर होते हैं। विप्रलंभोन्मुख शृंगार और शृंगारोन्मुख विप्रलंभ जिनमें यत्र-तत्र रहस्यानुभूतियों कीं उर्मियाँ भी उद्वेलित होती हैं। दूसरी धारा है राष्ट्रीयता की। इसकी अभिव्यक्ति 'हे वीर। हिंड अगिसरी।' [हे वीर, वढ़ो अग्रसर।], 'आमाको पुकार' [माता की पुकार] 'शक्ति देऊ हरि।' [शक्ति दे हरि], 'इच्छा' आदि कविताओं में पूर्णरूपेण रूप में हुई है। कवि नेपाल देश के नर-नारियों को हर्षोत्फुल्ल आनन देखने के आकांक्षी हैं। वे जातिगत के उन्मूलन की भावना के पोषक हैं। वे समाज आर्थिक वैषम्य पर रक्त के आंसू बहाते हैं—

रोती कलपती मां ने भर आह यूं पुकारा,
क्योंकर हुई, यह मेरी सन्तान अलग-अलग है।
कोई धनी बना है, बिल्कुल गरीब कोई,
क्योंकर इन्हें मैं देखूं, सन्तान अलग-अलग है।
नंगा निपट है कोई, पहने है कोई मखमल,
कैसे कहूं यह मेरी सन्तान अलग-अलग है।
है स्वर्ण-पात्र इस घर, पत्तल उधर है खाली,
क्योंकर सुनूं कि मेरी सन्तान अलग-अलग है।
रहता महल में कोई, छप्पर लिये है कोई,
कैसे कहूं यह मेरी सन्तान अलग-अलग है।

[रूपान्तरकार— डा० इन्दु शेखर]

इस भावना के उद्गाता से नेपाल का नये सिरे से निर्माण अवश्य होगा जो जन-जन के लिये सुखद और कल्याणकर भी होगा। वे ब्राह्मण और चाण्डाल तथा पशु-पक्षी में अभिन्नता के दर्शन कामी हैं। वे विश्व-बन्धुत्व के अभिलाषी हैं। वे नारी स्वातंत्र्य के पक्षपाती हैं। वे वर्ग और जाति की जटिलता के भंजक हैं। उनकी देशभक्ति इन पंक्तियों में दृष्टव्य हैं—

मर्‌यो ज्यूं दैत्यो जस्ले बिर्स्यो देश की माटी,
बांच्यों संधैं त्यों जस्ले समझ्यो देश की माटी॥

[अर्थात् जिसने देश की मिट्टी भुला दी वह जीवित होकर भी मृत है और जिसने देश की मिट्टी समझी है वह सदा जीवित है]

यहाँ मुझे महाकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त की ये पंक्तियां स्मृत होती हैं—

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है,
वह नर नहीं, नर-पशु निरा है और मृतक-समान है।

कवि की सत्-कीर्तिकामना इन पंक्तियों में दृष्टव्य है—

प्रीतिगरेर सबमा, छोड़ूं नाम-निशान।
पाप-पुण्य दुइ साथ छ जाने।
बांकी प्राण पनि छोड़ेर जाने,
रहँ दो रहने छ के ही आखिर।
छोड़ूं नाम-निशान।
प्राण हंस जब नभ बिच उड़ूला,
कामगर्न यो देहले छोड़ूला,
कोमल शरीर भन्दथ्यो जसले,
छिह छिह लैजा भन्ला,
सागर का बिच घड़ा फुटैमा,
पानी-पानी मिलि एक भए झैं,
अन्त्य कालमा कामरहित भैं,
सागरमा मिलि जाऊं॥
छोड़ूं नाम-निशान।

जिनकी हिन्दी रूपान्तर यों है—

जिस दिन प्राण चले जायेंगे,
कुछ न रहेगा शेष,
पाप-पुण्य को छोड़ सभी का

होगा जब अवसान,
जग में छोड़ूं नाम-निशान।
प्राण हंस नभ बीच उड़ेगा,
छोड़ मनुज की देह,
मृदु तन देख कहेगी दुनिया
ले जाओ शमशान—
जगमें छोड़ूं नाम निशान।
सिन्धु बीच यदि घट टूटेगा
जलमिल होगा एक,
अन्तकाल में काम-रहित हो
मिलूं सिन्धु में आन—
जग में छोड़ूं नाम निशान।

तीसरी धारा है नैसर्गिक सुषमा की जिसमें नेपाल की हिमानी प्रकृति में उद्भूत पादपों और वन प्रसूनों के ही सजीव चित्र नहीं हैं वरन् वनस्थली में विहार करते पशु-पक्षियों और मानव प्राणियों की हार्दिक उन्मुक्तता के भी तथा उनके तन और मन की स्वस्थता के भी।

इसमें सन्ध्या के रंग-बिरंगी पटोर हैं, रूपहली रात है, नदियों का कल-कल निनाद है, हरि पहाड़ियां हैं, निर्झर की निर्मलता है, श्वेत हिम मण्डित हिमालय की भव्यता है—आदि—

तितर पंखी बादलु माथी, सुनौलो साँझमा,
वगें को खोला कल-कल गरी, जुनिलो रातमा।

[अर्थात् तितली पंखी बादल है, नीचे सुनहली सन्ध्या में कलकल निनादी निर्झर-चांदनी रात में प्रवाहित हो रहा है]।

यतार उती हरीयो डांडा, निर्मल झरना,
रूपौलो रंग ठाकुरो उच्चा- क्या राम्रो हिमालय।

[अर्थात् इधर-उधर उतुंग गिरि है, निर्मल निर्झर है, रूपहले रंग का ऊंचा शीर्ष क्या है सुन्दर हिमालय का]

थप्लोमा नाम्लो, पीठमा डोकी बोफेका मर्दाना,
आखंमा गाजल कोरेकी मात्र पवित्र जनाना।

[अर्थात् मस्तक पर पट्टा, पीठ पर टोकनी उठाये जा रही है। नर और नयनों में मात्र काजल पारे जा रही है पुनीता रमणी]।

'गोठाल्नी नारी प्रति' शीर्षक कविता में चित्रात्मकता की सघनता है और स्वाभाविकता का पर्याप्त पुट भी। इसमें मर्मस्पर्शियता है और प्राकृतिक रहस्यवादिता भी।

'उसँको लागि' को विरह-काव्य की भी संज्ञा दी जा सकती है। वस्तुतः इनके कवि के विचारानुसार अश्रु और हास का संघर्ष ही जीवन है—

आंसु र हांसी को संघर्ष जीवनीमा।
हिम्मत न हार विन्ति यो प्यार को सफरमा।

[अर्थात् है अश्रु-हास का ही संघर्ष जिन्दगी में,
हिम्मत न हार जाना इस प्यार के सफर में।]

विरह गीतों में कवि की भावना के आधार में कहीं-कहीं मूर्तता है और कहीं-कहीं अमूर्तता भी तथा रहस्यमयता भी। इसकी चरम परिणति—

घायल पंछी-सामँ उड़ता,
झंझा-तूफानों से लड़ता,

यहां छटपटाता एकाकी-
कौन देश तुम गयीं और क्यों ?

हृदय नगर मेरा कर सूना,
छीन शान्ति दे कर दुख दूना,
छोड़ मुझे विह्वल एकाकी-
कौन देश तुम गयी और क्यों ?

आंधी में क्यों छोड़ा दामन
डगमगा रहा है यह जीवन
चन्द्रहास था कल जिस उर में,
घिर-घिर छाये आज वहां घन—
कौन देश तुम गयीं और क्यों ?

मोद-हास के सब मधु मेले,
गये, बचे कुछ अश्रु कसैले,
सुखद इन्द्रधनुषी सतरंगी
विसरी सुधि, हम रहे अकेले—
कौन देश तुम गयीं और क्यों ?

नेपाली कविता में आजकल मालिनी, शिखरिणी, वसन्त तिलका आदि छन्द प्रचलित हैं किन्तु कवि श्री ५ महेन्द्र, ने प्रचलित छन्द योजना का त्याग कर नया मार्ग अपनाया है और कबीर दास को इन पंक्तियों की सार्थकता प्रदान की है—

लीक छाँड़ि तीनौं चलैं
सायर, सिंह, सपूत।

उन्होंने ऐसे अनेक शब्द प्रयुक्त किये है जो नेपाली शब्द कोश में अनुपलब्ध है। ये शब्द व्यंजनापूर्ण हैं।

उनकी कविताओं में माधुर्य का प्राचुर्य है वहां प्रसाद का प्रवाह भी। वे संश्लिष्ट शब्द योजना के पक्षपाती हैं। उनकी कविताओं में प्रगतिगामिता है और दिशा-दृष्टि भी, वे सब कुछ कह कर भी पाठकों को सब-कुछ कल्पना करने के लिये छोड़ देते हैं। उनका यह गुण उन्हें कवि के सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठित करता है क्योंकि सन्त बो के विचारानुसार कविता का धर्म सब कुछ देना ही नहीं है वरन् सब कल्पना करने के लिये छोड़ देना है (poetry Consists not in saying everything, but in bring everything to be imagined—Sainte Beauve.

यदि शासक कवि हो, गुणज्ञ हो, गुणग्राही हो, शास्त्रज्ञ हो, नीतिज्ञ हो राजनीति-पटु हो, प्रज्ञावान् हो और विश्व बन्धुत्व का अभिलाषी हो तो देश का कल्याण होता है इस अर्थ में नेपाल के सर्वतोमुख उन्नयन में हमारा अखंड आत्मविश्वास है। इस दृष्टि से नेपाल-नरेश विश्व के नरेशों या शासकों में सर्वाधिक सौभाग्यशाली हैं और अनुपमेय भी।

●

महामहिम श्री राजबहादुर जी

लम्बा कद, सुगठित, भरा हुआ चेहरा, आंखों में मिलनसारिता और मृदुता के भाव-ये हैं नेपाल में भारत के राजदूत महामहिम श्री राजबहादुरजी। ये मिष्ट भाषी इतने हैं कि एक ही बार की भेंट से मन मुग्ध हो जाता है।

ये कार्यों की अधिकता से कभी झुंझलाते नहीं। सदा प्रकृतिस्थ होकर कार्य करना इनकी प्रकृति है। ये समय का सदुपयोग अच्छी तरह से करते हैं किसी से तन कर बातें करना इन्होंने सीखा ही नहीं। ये सबसे हिलमिल कर बतियाते हैं। इन्हें न पद का अभिमान है न मान का मद।

इनके निजी आचरण में स्वाभाविकता एवं सादगी है। ये भीतर-बाहर से एक हैं। इनकी बात करने का ढंग सदा एक सा रहता है, चाहे ये एक व्यक्ति से बातें करें या हजार व्यक्तियों से।

इनकी आवश्यकताएं इतनी सादी और अल्प हैं कि इन्हें परावलम्बी होने की आवश्यकता नहीं होती। ये सहज भाव से जीवन-यापन करते हैं। ये परिश्रम और कर्म को मुख्य मानते हैं ये अत्यन्त भावुक भी हैं और जब किसी की कविता पढ़ते हुए सुनते हैं तब इनकी भावुकता देखने लायक होती है।

ये उच्च कोटि के विचारक, चिन्तक और दार्शनिक हैं। इनका व्यक्तित्व स्वार्जित हैं— इनहोंने अपने व्यक्तित्व का निर्माण स्वयं किया है। ये अपने समय के एक विख्यात वकील थे किन्तु देश सेवा के लिये इन्होंने अपनी चलती वकालत ठुकरा दी।

ये आडम्बर—रहित हैं और निष्कपट भी। ये मिलने वालों से कभी उकताते नहीं। उनके साथ ये कभी अप्रिय व्यवहार नहीं करते। ये छोटे-बड़े सबसे समभाव से मिलते हैं और सबको अपना स्वाभाविक स्नेह अर्पित कर मुग्ध कर देते हैं। जो इनसे पहली बार मिलता है, यह अनुभव करता है, कि सत्य और प्रेम ही इनकी प्राण शक्ति हैं।

इनकी शिष्टता-शालीनता दुनिया में दुर्लभ है। ये अपने विपक्षियों से भी स्नेह सद्भाव से मिलते हैं— यह इनका प्राकृतिक गुण है ये जिस हद तक गंभीर हैं उसी हद तक अपने कर्तव्य-दायित्व के सफल निर्वाहक भी। इनमें

आचार-विचार, हाव-भाव और रहन सहन की सरलता से मानव-जीवन के विविध तत्वों के उस असाधारण एकीकरण की अभिव्यंजना होती है जो मन, वचन और कर्म के भव्य सामंजस्य से ही प्राप्त है। इन की वाणी से विनयशीलता टपकती है। प्रथम दृष्टि में आप इन्हें रुक्ष और कठोर समझने को बाध्य हो सकते हैं, क्योंकि इनके मुखमंडल पर गांभीर्य छाया रहता है लेकिन शीघ्र ही आप इनके सद्व्यवहार से प्रसन्न हो जायेंगे और तब आप अनुभव करेंगे कि ये आन्तरिक रूप में सरल और मधुर हैं। ये अपने को दिखलाने की चेष्टा नहीं करते और वही बोलते हैं जो उनके हृदय में होता है तथा जो बोलते हैं वही करते हैं—ये मनसा वाचा-कर्मणा एक हैं। यही कारण है कि ये जहां परिचितों के श्रद्धापात्र हैं वही अपरिचितों के भी। इनमें अतिथेय-भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। ये आर्दशवादी हैं। इनके समान ईमानदार, कर्तव्यशील, और परिश्रमी व्यक्ति बहुत कम मिलते हैं ये जनता के दुःख दर्द दूर करने को सर्वदा तत्पर रहते हैं। इतने बड़े विद्वान होने पर भी अपने मधुर व्यवहार से सभी लोगों को संतुष्ट करते रहते हैं। किसी पर अपने पांडित्य की धाक जमाते नहीं।

अगर कोई इनसे किसी तरह की जानकारी चाहता है तो ये किसी की उपेक्षा कर सकते हैं और न हताश। धीर गंभीर भाव से यथोचित सुझाव और जवाव दे देते हैं। जो महाशय उनके पास जाते हैं इनकी मधुरता से तृप्त होकर आते हैं। इनकी चिन्तन धारा और विचारधारा तथा लेखन शैली में इनकी निजि मौलिकता की ही सत्ता व्याप्त रहती है। आज का काम ये कल के लिये नहीं छोड़ते। अपने उत्तरदायित्व के निर्वाह में सदा सावधान रहने की आदत इनमें हैं। उसके कारण ये आज की फाइलें कल के लिये नहीं छोड़ते। इनके विचार वड़े ही ठोस होते हैं। ज्ञान का गौरव इनकी मुखमुद्रा से टपकता है। ये स्वप्न दर्शन को नहीं व्यवहार विवेक को महत्व देते हैं उतावली और उद्विग्नता से कभी समस्या पर विचार नहीं करते। धैर्य, विवेक, और सरलता ही इनके स्वभाव की परिपक्कता की त्रिवेणी है। इनके हाथ में किसी तरह का भी काम सौंपा जायगा सुरक्षित रहेगा। ये अपना विचार किसी पर नहीं लादते। इनके समान लगन के साथ काम करने वाला विरला ही मिलता है।

सार्वजनिक कार्यकर्त्ता के लिये जिन गुणों का होना आवश्यक है महामहिम श्री राजबहादुर जी में वे सव गुण हैं। लेकिन दो वातों से इन्हें कष्ट पहुंचता है। असत्यता पूर्ण आलोचना से और छल कपट भरी राजनीतिक चालों

से सधारणतया राजनीति के क्षेत्र में कूटनीति और छलबल को बहुत स्वाभाविक माना जाता है। महामहिम को छल-कपट से अरुचि है। इनका सब से बड़ा गुण यह है कि जनता की सस्ती प्रशंसा पाने के लिये कभी अपने ऊंचे आदर्शों से नहीं डिगे। अपने सिद्धान्तों की रक्षा के लिये ये अधिक से अधिक कठिनाइयों और विरोधों को सहर्ष सहन कर लेते हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश करने के बाद इन्होंने राष्ट्रनिर्माण के सभी कार्यों में पूरा सहयोग दिया।

ये भारत नेपाल मित्रता को एक जबर्दस्त सूत्र में जोड़ने में अपनी सारी शक्ति लगाये रहते है। इनका कहना है कि स्वार्थ बुद्धि या अहंकार द्वारा किया हुआ काम दुःख व बन्धन का कारण होता है। ईश्वर ने मुझे इसलिये जन्म दिया है कि मैं निष्काम भाव से अपने कर्तव्य का पालन करता रहूं, जो करूं वह अपने लिये नहीं परमपिता परमेश्वर को अर्पण करने लिये हो।

वकालत का काम करने के बाद जो समय शेष रह जाता था उसे ये सार्वजनिक कामों में लगाते थे। इन का सबसे बड़ा गुण यह है कि ये जिस व्यक्ति या संस्था का साथ करते हैं उसके साथ सच्चे मन से निभाते हैं। ये कभी किसी के साथ विश्वासघात नहीं करते। केवल अपनी योग्यता के बल पर ऊपर उठने में मनुष्य बहुत सी कठिनाइयां अनुभव करता है। लेकिन उसकी योग्यता के भीतर एक शक्ति होती है जो स्वयं उसे ऊपर की ओर ले जाती है। काव्यक्षेत्र में अपने दायित्व-ज्ञान को ये कभी कुण्ठित नहीं होने देते। इनकी उपकार-वृत्ति कर्मवीरों की उद्‌भावना करने वाली है। जिस सदाचार का, जिस चरित्रनीति का, सम्बन्ध हृदय से न होकर सूखे सिद्धान्त से होगा, उसे ये नहीं अपना सकते। उसकी उपयोगिता पर उनका विश्वास जम ही नहीं सकता। मानव सुलभ दोष गुण को सहृदयता की दृष्टि से देखने वाला स्वाभाविक आचरण ही इनके लिये महत्व रखता है। पाप और पुण्य का औसत निकालकर जिस सदाचार का निरूपण किया जायगा, वही इनकी दृष्टि में मंगलकारी है,। इनके आदर्श, पृथ्वी पर दिखाई पड़ने वाले आदर्श होते हैं, आकाश के प्रकाश-गर्भ में अदृश्य रहने वाले नहीं।

जिस तरह से महामहिम श्री राजबहादुर जी का व्यक्तित्व विशाल है, मन उस से भी अधिक उदात्त है। उनके पास बैठकर यह महसूस होता है कि किसी ऊंचाई के पास हैं जहां से सहज, पवित्र स्नेह की धारा बह रही है।

इतना बड़ा राजनीतिज्ञ होकर भी ये विनयी हैं और महान स्रष्टा होने पर

निराभिमानी हैं। ये एक स्वच्छ निर्मल दर्पण हैं, जिसमें हर व्यक्ति अपनी परिछांई भली-भांति देख लेता है। इनका विश्वास सादा जीवन उच्च विचार में निहित है। उनका कहना है कि झूठ बोलने से संस्कार नहीं पनपता है, मनुष्य संस्कारहीन हो जाता है और वह आगे नहीं बढ़ सकता है। ये सत्य और अहिंसा के बहुत बड़े पुजारी और भक्त हैं। इनमें अपार धैर्य, संतोष एवं राष्ट्र प्रेम है। इनके जैसा निष्काम, निस्पृह त्यागी और अजातशत्रु पुरुष आज के संसार में विरला है। इनके जीवन के अधिकांशतः आचरण, कार्य तथा व्यवहार से तो मुझे तो ऐसा ही लगता है। जो इनके सम्पर्क में आता है उस पर अपनी अमिट छाप छोड़ देते हैं। अहंकार उनमें रंचमात्र भी नहीं है लेकिन तेजोदीप्त स्वाभिमान उनमें कूट कूट कर भरा हुआ है।

ये उदार हैं और हैं परोपकारी। ये बिलकुल शान्त शिष्ट व्यक्ति हैं। इनका चरित्र उदात्त है। ये सखा सेवक हैं राजनीतिज्ञ हैं और समाज सेवी के साथ-साथ पर दुख हर्त्ता। ये दूसरों की उन्नति देखकर हृदय से प्रसन्न होते हैं। लोभ तो उन्हें छू नहीं सका है, और क्रोध को उन्होंने जीत लिया है। धर्म और देश के प्रति उनमें पूर्ण आस्था एवं प्रेम है। देशभक्ति, सेवा परायणता, कर्तव्यनिष्ठ, आदि गुणों से सम्पन्न होने के अतिरिक्त इनकी योग्यता महती है।

ये १२ अगस्त, १९१२ ई० में उत्पन्न हुए थे। ये सुप्रीम कोर्ट के एडवोकेट थे। इन्होंने गवर्नमेंट हाई स्कूल भरतपुर, महाराजा कालेज जयपुर, आगरा कालेज तथा सेंट जान कालेज, आगरा में बी० एस० सी०, एम० ए०, एल० एल० बी० की उपाधियां प्राप्त कीं।

१९३९-४२ ई० में ये केन्द्रीय सलाहकार समिति, तत्कालीन भरतपुर राज्य के सदस्य थे और १९४१-४२ ई० में भरतपुर की नगर पालिका के सदस्य थे। जब इन्होंने-भारत छोड़ो-आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया तब उन सदस्यताओं से इन्होंने त्याग-पत्र दे दिया। ये स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय भाग लेते थे। इससे भरतपुर राज्य में ये दो बार जेल गये और अन्यान्त दमन चक्रों के शिकार हुए। सन् १९४३ ई. से १९४९ ई. तक ये अखिल भारतवर्ष देशी राज्य लोक-परिषद् के सदस्य रहे। १९४३ से १९४८ ई० तक ये भरतपुर राज्य-प्रजा-परिषद् के मंत्री रहे, १९४९ ई० से १९६७ ई० तक राजस्थान प्रदेश कांग्रेस कमेटी और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य रहे, १९४८-४९ में मत्स्य यूनियन कांग्रेस के मंत्री रहे, १९४८-१९५१ ई०

में भरतपुर बार-एशोसिएसन के अध्यक्ष रहे, नवम्बर १९४८ ई० में मत्स्य यूनियन क्षेत्र से भारत विधान निर्मात्री परिषद् के सदस्य निर्वाचित हुए, १९४३ ई० में भरतपुर राज्य की रिप्रेजेंटेटिव एसेम्बली के सदस्य निर्वाचित हुए, १९५०-५२ ई० में कांग्रेस संसदीय पार्टी के सचिव रहे, १९५१-१९५२ ई० में संचार-उपमंत्री रहे एवं १९५६ में संचार विभाग के राज्य मंत्री हुए।

इन्होंने अन्तरराष्ट्रीय नागरिक उड्डयन संस्था कराकस [वेन्जुला] में आयोजित दसवें अधिवेशन में भारतीय प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व किया। दिसम्बर १९५६ ई० से १९५७ ई० तक ये संचार मंत्री, १९५७ ई० से ६२ ई० तक परिवहन और संचार मंत्रालय में राज्य मंत्री, १९६२-६३ ई० में परिवहन राज्य मंत्री, अगस्त १९६३ से जनवरी ६६ ई० तक परिवहन मंत्री, जनवरी १९६६ ई० से मार्च, १९६७ ई० तक सूचना तथा प्रसारण मंत्री और जनवरी १९६८ ई० से नेपाल में भारत के राजदूत हैं। इस प्रकार इन्होंने एक समय में अनेक पदों का भार संभाला है और सफलता पूर्वक कार्य सम्पन्न किया है। वस्तुतः ये एक व्यक्ति नहीं, एक सजीव और महिमान्वित संस्था हैं।

●

कविवर केदारमान व्यथित

लम्बा कद, दिव्य मुख मंडल और शरीर और प्रतिभा प्रदीप्त आखें— ये हैं नेपाल के कुलपति और भूतपूर्व मंत्री तथा कवि श्री केदारमान व्यथित। इनका जन्म सिन्धु वासवारी, काठमांडू उपत्यका के पूर्वी अंचल (नेपाल) में ता० ३० अक्टूबर १९१४ ई० को हुआ था। ये संस्कृत हिन्दी, नेपाली और नेवारी भाषाओं के मर्मज्ञ ज्ञाता हैं और घटों तक हिन्दी में धाराप्रवाह रूप में भाषण करते हैं। ये जिस व्यक्ति या संस्था को योग देते हैं, सच्चे मन से देते हैं। यही कारण है ये सब के विश्वास पात्र बने रहते हैं इन्होंने राजकीय आमंत्रणों पर रूस तथा अन्यान्त यूरोपी देशों तथा भारत का अनेक वार पर्यटन किया है।

ये अनेक वार जेल गये हैं। सन् १९४० ई० तक नेपाल जेल में और १९४८ ई० से १९५१ ई० तक भारत [पटना] की जेल में रहे। सव मिलाकर अपनी जिन्दगी के अनमोल अट्ठारह वर्ष इन्होंने जेलों में विताये इस कारावास-जीवन में इन्होंने कितनी यंत्रणायें झेलीं और कितनी वेदनायें भुगतीं, यह इतिहास का एक अलग अध्याय है। वस्तुतः जिसन जेलों की हवा नहीं खाई वह भला इसके कष्ट दुःख और यातना के वारे में क्या कल्पना करेगा ? कोई भुक्त भोगी ही इसका अनुभवकर सकता है। जो न गया है जेल, जेल का हाल भला वह क्या जाने।

जीवन का संघर्षमय होना अत्यन्त आवश्यक है। संघर्ष से मनुष्य का वास्तविक विकास होता है, यदि मनुष्य कठिन परिस्थितियों से लड़ सका तो वह विश्वविजयी तक हो सकता है, और यदि अपनी परिस्थितियों से लड़ने में उसकी पराजय हुई तो उसका सारा जीवन एक पराजित का जीवन रहेगा। मनुष्य परिस्थितियों का दास है। फिर भी वह उन्हें अपने पराक्रम से अपने सुविधानुसार तोड़ मरोड़ सकता है। वास्तव में महापुरुष परिस्थितियों से नहीं डरते। परिस्थितियाँ उनसे डरा करती हैं। महाकवि श्री केदारमान व्यथित का जीवन भी संघर्ष का जीवन रहा है। अपनी परिस्थितियों से लड़ने का इससे वरावर प्रयास किया है और वहुत अंशों में ये विजयी भी हुए हैं। विजय

और पराजय कोई लाभ और हानि का आंकड़ा नहीं। वे तो हृदय की अनुभूतियों के समान हैं। हो सकता है हमारी विजय में ही हमारी हानि हो। फिर भी हम अपने नियमों पर डटे हुए रहेंगे। और यही हमारी विजय होगी। कविवर व्यथित जी अपने नियमों के बड़े कट्टर पालक हैं और विजय उनकी निर्भयतापूर्ण पालन में है। छोटा हो या बड़ा, जो भी जैसा हो, ये सबसे हिल-मिल कर बातें करते हैं। उनके निजी आचरण में स्वाभाविकता एवं सादगी है तथा भीतर एवं बाहर से वे एक हैं। मैत्री-धर्म की सौन्दर्य-रक्षा में सदैव तत्पर रहने वाला इनका प्रेम-पूर्ण हृदय यह कभी नहीं चाहता कि इनके मन, वचन, या कर्म को शत्रु-सृष्टा की संज्ञा मिले। अपने चारों ओर सद्भाव, सौजन्य, शान्ति और सहिष्णुता का सुख-सम्पन्न वातावरण बनाये रखना, छोटे-बड़े सबके साथ हिलमिल अपने कार्य-क्षेत्र में सहयोग और सहानुभूति का संचार करते रहना इनकी प्रशान्त मनोवृति और ऐक्य-निष्ठा के द्योतक हैं। यही कारण है कि इनके हितचिन्तकों तथा मित्रों की संख्या मैत्री की महत्ता को भी पार कर गई है। मैत्री स्वयं उतनी बड़ी नहीं जितनी बड़ी इनकी मित्र-मंडली है। मित्र भी कैसे-कैसे ? एक से एक चुने हुए और जीवन व्यापार के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में लोकोपयोगी काम करने वाले। इनको उत्कर्ष-वृद्धि में इस मित्रत्व-विधायिनी शक्ति का बहुत बड़ा हाथ है।

विनम्रता-प्रदर्शन की चेष्टा का अभाव इन्हें कभी अविनयी, अशिष्ट या असहृदय बना दे, नहीं हो सकता। बिलकुल स्वाभाविक ढंग से मिलेंगे, बातें करेंगे। इनके साथ व्यवहार पथ पर चलते हुए आपको न किसी प्रकार का विस्मय होगा, न क्षोभ ये जितने ही परिचित से लगेंगे उतने ही सुखद से भी प्रतीत होंगे।

मनुष्य में जो गुण होने चाहियें वे पूर्ण मात्रा में इनमें वर्तमान हैं। स्वभाव में मृदुलता इनका मानो जन्मजात गुण है। बातें वे इतनी मुलायमित से करते हैं एवं इनकी बातों में सज्जनता की मात्रा इतनी अधिक रहती है कि आदमी खाम-ख्वाह इनकी ओर खिंचा जाता है। अतिथि सत्कार इनका अद्वितीय है। अपने यहां आये हुए मेहमानों का सत्कार करने में ये कभी अघाते नहीं। आतिथ्य की कला कोई इनसे सीखे।

स्वभाव में अत्यन्त नम्र-उदार साहित्यकारों के लिये तो वरदान हैं और अनासक्त और निर्लिप्त व्यक्तित्व से भरपूर व्यक्ति है। ऐसा व्यक्तित्व जिस व्यक्ति में समा जाता है वह व्यक्ति स्तर से उठकर अपने व्यक्तित्व के

कारण संस्थोत्तर रूप ग्रहण कर लेता है। यही बात महाकवि केदारमान व्यथित के जीवन में दिखाई देती है।

व्यथित जी अपनी मान प्रतिष्ठा के कभी भूखे नहीं रहे। ये निष्काम भाव से वासना रहित हो देश तथा साहित्य की बराबर सेवा करते रहे। इनमें न तो यश की आकांक्षा है न बड़े पद की लोलुपता, न अपने विख्यात होने की लालसा रहती है। जो भी काम करते हैं निस्पृह भाव से कर्तव्य समझ कर करते हैं।

इनका संपूर्ण व्यक्तित्व इनके काव्यों की भांति मनोहर उद्बोधक और प्रेरणादायक है। वस्तुत: अपने काव्यों की भांति ही अपने जीवन को इन्होंने महान-प्रेरणादायक तत्वों से संघटित किया है। ये धवलागिरी की चोटी के समान स्वच्छ, पवित्र और महान हैं। इतने महान होते हुए भी इनका दिमाग बादलों में नहीं वरन् साधारण जनता में है। इन का स्वभाव उतना सरल और सरस है कि इनके लिये यह कहा जा सकता है कि ये करुणा के साक्षात अवतार हैं। मनुष्य इनके अगाध पांडित्य, साहित्य सेवा और व्यक्तित्व से कहीं ऊँचा है—बेहद ऊँचा है। ये जो कुछ करते हैं काम और सेवा की खातिर करते हैं और निष्काम सेवा वृत्ति से ही करते हैं।

इनके व्यक्तित्व का समस्त वातावरण स्वाभाविकता से सजा रहता है। इसमें कहीं किसी प्रकार की अस्वाभाविकता या असुन्दरता के लिये स्थान नहीं।

आर्य आकृति प्रकृति के ये तेजस्वी कवि जब अपनी वाणी का प्रसाद बांटने को खड़ा होते हैं तब ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो कोई देवदूत हमें जीवन का दिव्य संदेश सुनाने और जीवन-सत्य का साक्षात्कार कराने आया है। इनकी स्वर लहरों में भी एक अद्भुत आकर्षण है, एक अजीब मस्ती है, और इनके एक-एक शब्द से रस टपकता है। इनका हृदय परिमार्जित है और मस्तिस्क भी। हृदय को इन्होंने दिव्य भावों की विभूति से भर रक्खा है और मस्तिष्क को निर्मल बुद्धि के वैभव से। इसी हृदय और मस्तिष्क के आकर्षक समन्वय में एक प्रथम कोटि की प्रतिभा का वरदान मुस्कुराता रहता है।

वैयक्तिक और सामूहिक वेदना की सहजानुभूति से भरे हुए स्नेह और सहानुभूति के तथा साहस शौर्य और शक्ति के ये अमर गायक हैं। बिल्कुल स्वभाविक ढंग से ये मिलते हैं। इनके साथ व्यवहार पर चलते हुए न किसी प्रकार का किसी को विस्मय हो सकता है न क्षोभ।

जिस प्रकार हृदय और मस्तिष्क के सामानुपातिक विकास पर सम्पूर्ण

शारीरिक विकास निर्भर है उसी प्रकार इनके व्यक्तित्व का विकास इनके साहित्यिक और राजनीतिक जीवन पर अवलम्बित रहा है जिस प्रकार हृदय और मस्तिष्क एक दूसरे के पूरक हैं उसी प्रकार इनके व्यक्तित्व के पूरक साहित्य और राजनीति दोनों रहे हैं। पूर्ण विश्वास के साथ निर्विवाद रूप में यह नहीं कहा जा सकता कि राजनीतिक के कंगूरे पर चढ़ने में साहित्य ने सीढ़ी का कार्य किया है या साहित्य के शिखर पर विराजमान होने में राजनीति ने मार्ग प्रशस्त किया है। लेकिन यह बात निःसंकोच रूप में कही जा सकती है कि यदि इनके मस्तिष्क ने राजनीति के पक्ष में आफतों और कठिनाइयों से जूझने वाला इन्हें धैर्य प्रदान किया है तो इनके हृदय ने इन्हें दुःखों को भुलाने वाली मस्ती दी है। इनके मस्तिष्क-तन्तु यदि राजनीति में सक्रिय रहे तो इनके हृदय की वृत्तियां साहित्य में रमती रही हैं। ये यदि सत्यप्रिय हैं तो इसका श्रेय इनके साहित्य को है और यदि कर्त्तव्यशील हैं इसका श्रेय राजनीति को है।

इनकी कल्पनाशीलता और भावुकता के निर्माण में साहित्य ने अपना इन्द्रधनुषी रंग प्रदान किया है और जहां जहां तक इनकी व्यावहार-कुशलता और नीतिज्ञता की बात है, राजनीति के योग को विस्मृत नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार पक्षी अपने नशेमन के प्यार से आवद्ध होकर तिनकों का चयन करता है और नशेमन का त्याग कर अनन्ताकाश में विचरण कर स्वर्गीक ज्योति से सम्पृक होता है उसी प्रकार इनकी बहिर्मुखी प्रवृत्तियों की परिपुष्टता और मांसलता में राजनीति का योगदान रहा है और इनकी अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों को परवान चढ़ाने में साहित्य ने कम सहायता नहीं की है। राजनीतिक जीवन की मरुभूमि की शुष्कता, तीक्ष्णता और कठोरता के जब-जब ये श्रान्त क्लान्त और उदास हुए हैं तब-तब साहित्य ने इन्हें अपनी सरसता, मधुमयता और सप्राणता से सिक्त और पुनरुज्जीवित किया है।

वस्तुतः राजनीति इनकी जिन्दगी की राह है जिस पर चलते-चलते जब ये थक जाते हैं तब साहित्यिक सपनों की ऐन्द्रजालिक दुनिया में पहुँच कर विश्राम करते हैं और प्रेरणा का अक्षय श्रोत पाते हैं।

ये नवीन युग के चारण हैं। यही कारण है, ये लिखते हैं—

"बगिरहेछ मेरै शिखर-बाट
उज्यालो को संगीत,
ग्रहण गरे हुन्छ
इतिहास ले नयां परिच्छेद,
मेरो युग पनि बिभिस के कोछ।"

अर्थात्—वह रहा है मेरे ही शिखर से
उजाले का संगीत,
ग्रहण कर सकता है इतिहास
एक नया परिच्छेद,
क्योंकि मेरा युग जाग गया है।

उनके हृदय में सर्वकल्याण-कामना-लता विकसित है—

"मंगलका लागि
उदय भास्वर हुने
सबै को श्रेष्ठता
स्वभावतः जाग्रत हुंदैं छ।
परेलामा थुनिए को क्षितिज पनि
बन्ध मुक्त भइ सके को छ,]
यहाँ कसैलाइ पनि
सौरभ को खाँचो हुने छैन,
अधरमा फाल्गुन फुलिस के को छ।",

अर्थात्—कल्याण के लिए
उदय उद्भासित
सभी की श्रेष्ठता
स्वभावतः जागृत होने लगी है।

पलकों में बन्द क्षितिज भी
बन्ध-मुक्त हो चुका है,
यहाँ किसी को भी
गन्ध की कमी नहीं होगी,
अधर में फाल्गुन खिल चुका है।

महात्मा बुद्ध की जन्मभूमि के निवासी कवि के विचार उनके सिद्धान्त को आत्मसात कर बैठे हैं—

"यसर्थ कठोर हुनें
प्रश्नै उठ्दैन,
रक्त-स्नान लाइ घृणा गुर्छु,
बरु मेरै करुणा बाट
पल्लवित हो ओस् सबका जीवन वृक्ष!"

अर्थात्—तस्मात् कठोर होने का
प्रश्न ही उठता नहीं,
रक्त-स्नान से मुझे घृणा है,
बल्कि मेरी ही करुणा से
पल्लवित हों सबके जीवन-वृक्ष ।

उनकी काव्य-सरिता में यत्र-तत्र दर्शन की उर्मियाँ उद्वेलित होती हैं। वस्तुतः उनके व्यक्तित्व में एक दार्शनिक भी समाहित है—

"मेरो एक मात्र इच्छा छ,
सम्पूर्ण ऊर्ध्वमुखी सृष्टि
उदात्त मेरै वरिपारि
घुमिरहुन् वारंवार
आलोकि मूल बनेर ।
समष्टिमा मेरो व्यष्टि

बाँडिन लागि रहे को शुभ साइतमा
निसृत हुन लागि रहे छ
प्रकाश स्फुलिंग का अनन्त कथा
मेरै जीवन को विराट प्रष्ठबाट ।"

अर्थात्—मेरी एक मात्र इच्छा है—
सम्पूर्ण ऊर्ध्वमुखी सृष्टि
उदात्त मेरे ही चारों ओर
बार-बार घूमती रहे
आलोकमूल बन कर ।
समष्टि में मेरी व्यष्टिका
बँटना जब से प्रारंभ हुआ
तभी से स्फुलिंगों की अनन्त कथाएँ
निःसृत होना आरंभ हुई
मेरे ही जीवन के विराट पृष्ठ से !

इनकी दार्शनिक कविताओं में 'सूक्ष्म विन्दु—विराट सृष्टि' शीर्षक कविता का विशिष्ट स्थान है जिसमें साधक की आत्मा की अनुभूति के दर्शन होते हैं।

इन्होंने अनेक प्रणय गीतों की भी रचना की है। इन गीतों में प्रेमी हृदय की आकुल पिपासा है—

"तिम्रै यौवन को
संगीतले परिपूर्ण
मेरै चुम्बन अभ्यस्त अधर का
मर्मरबाट
मुखरित हुन लागि रहेछ
प्रणय कै परिपक्वता !

रतिमामात्र प्रसन्न
मेरो काम
तिमै यौवन को शिखर-विन्दु
केन्द्र बनाई
सर्जनशील वासना कै
वृत्त बढाइरहन्छ।"

अर्थात्—तुम्हारे यौवन के
संगीत से परिपूर्ण
मेरे चुम्बन-अभ्यस्त अधर के
मर्मर से
निःसृत हो रही है
प्रणय की परिपक्वता !

निरन्तर रति में मात्र
प्रसन्न मेरा काम
तुम्हारे यौवन के
शिखर-विन्दु को केन्द्र बना कर
सर्जनशील वासना का वृत्त
और अधिक वढ़ा रहा है।

उनके प्रणय गीतों में 'सृष्टि शिलान्यास हुने शय्या' शीर्षक कविता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस कविता में मांसल सौन्दर्य व्यक्त हुआ है—

प्रणय का प्रत्येक पक्ष
प्रतिमान हुने
छ ऋतु बाट छ स्कन्ध
बने को तिम्रो देह

संवत् भैं पूर्ण छ !

नक्षत्र लाई पर्यन्त

उद्दीप्ति दिने

तिम्रै संगीत पूर्ण

काम-विलास-बाट

मेरो कायाकल्प हुन्दै छ !"

अर्थात्—प्रणय के प्रत्येक पक्ष से

प्रतिमानित

छह ऋतुओं से निर्मित

तुम्हारी देह

संवत् सदृश पूर्ण है !

नक्षत्रों तक उद्दीप्त-प्रसारित

तुम्हारे ही संगीतपूर्ण

काम-विलास से

हो रहा है

मेरा कायाकल्प !

इनकी प्रकृतिवादी कविताओं में 'कविता' शीर्षक रचना महत्त्वपूर्ण है। इसमें चित्रात्मकता है और मर्मस्पर्शिता भी। कोमलता और यथार्थता का मणिकांचन संयोग है। शाब्दिक चयन की उपयुक्तता है—

"टहटह जून, सुशीतल मारुत, पुलकित रजनि, उत्फुल्ल कमल
कुंज-कुंज क्रीडित कुसुमाकर, मर्मर नूपुर नर्तित तरुदल,
चित्रित खोजि रहे को हेरी कति उल्लसित प्रकृति प्रतिपल।"

प्रथम पंक्तियों के प्रथम दो शब्दों और अन्तिम पंक्ति के आद्यांश को यदि हटा दिया जाय तो ये पंक्तियां कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त या श्री गोपालसिंह नेपाली या श्री आरसी प्रसाद सिंह की प्रकृतिवादी कविताओं की पंक्तियों में आसानी से 'फिट' हो जायेंगी। यह इस बात का प्रमाण है कि नेपाली और हिन्दी दोनों अद्भुत साम्य है। दूसरी बात यह है कि कल्पनागत जो सकुमारता हिन्दी के कवि पन्त, नेपाली या आरसी में है वह 'व्यथित' जी में भी प्रचुर है। जो प्रसाद गुण हिन्दी के इन कवियों के काव्य में है वह 'व्यथित' जी के काव्य में भी। यह इस बात का प्रमाण है कि नेपाल और भारत के कवियों की कल्पना, भावना, दृष्टिकोण, स्वप्न, संगीत, शैली और शब्द चयन में अद्भुत एक रूपता है। 'व्यथित' जी लिखते हैं—

"कवि हेरिरहेछ यताउतिका, दृश्य मनोहर मुग्ध भएर,
संमुख बगिरे'छ नदी कलकल सिन्धु प्रवाहित लक्ष्य लिएर,
उर्वर हुन खोजिरहेछ मरुस्थल जीवन अभिषेक लिएर।
तीव्र गामिनी ललित कल्पना, नियंत्रित उत्कृष्ट विचार,
चढी दगुर्छन् छन्द-छन्दमा सकुमार मधुर भाव हजार,
जसलाई भन्छन्, काव्य रसिक, कविताको रसमय अभिसार।"

अर्थात्—देख रहा कवि इधर-उधर का दृष्य मनोहर मुग्ध हुआ सा,
संमुख दरिया बहता कल-कल सिन्धु-विलय का लक्ष्य लिए-सा
उर्वर होना चाह रहा मरु जीवनका अभिषेक लिए-सा !
तीव्रगामिनी ललित कल्पना नियंत्रित उत्कृष्ट विचार
चढ़ा दौड़ता छन्द-छन्दमें सुकुमार मधुर भाव हजार,
जिसको कहते काव्य रसिक कविता का रसमय अभिसार !

इन्होंने 'एक दिन', 'त्रिवेणी', 'संगम', 'संचयिता', 'प्रणव', '०६ साल को कविता', 'गुनासो', 'छ्वांस', 'पथ भ्रान्त पथिक', 'विरह-कोणा', 'स्फुलिंग', 'चिन्ता' आदि दर्जनों पुस्तकें रची हैं और हिन्दी में भी लगभग ७०-८० मौलिक कविताएँ रची हैं। इनकी अनेक कृतियाँ रूसी, चीनी और अंग्रेजी में अनूदित हुई हैं।

इन्हें 'खर्त्रि प्वा गुम्ये' पर धर्मोदय' पुरस्कार और 'छ्वांस' पर 'श्रेष्ठ सिरपा' पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। नेपाल राष्ट्र के 'ज्योतिर्मय त्रिशक्ति पट्ट' नामक परम श्रेष्ठ अलंकरण से ये विभूषित हैं। ये नेपाली साहित्य संस्थान के मान्य अध्यक्ष हैं।

इन्होंने नेपाल सरकार के शिक्षा-विभाग के भूतपूर्व उपमंत्री का पद-भार सफलता पूर्वक सँभाला है और तत्पश्चात् निर्माण, यातायात, नहर, विद्युत् और संचार विभागों के वरीय मंत्री का पद-भार भी। इनके जीवन का ध्येय है साहित्यकारों की संवर्धना-सहायता। ये साहित्यिक संगठनों के अतुल प्रयासी हैं। ये आजकल एक महाकाव्य के प्रणयन में लीन हैं।

जनकपुर धाम

हर आदमी के जीवन में छोटी बड़ी घटनायें घटती रहती हैं। चल-चित्र की भाँति तरह-तरह के दृश्य सामने आते जाते रहते हैं। पर काल का प्रवाह इतना तेज है कि अधिकांशतः घटनाओं और दृश्यों की स्मृतियां उस में विलीन हो जाती हैं। किस के पास इतना समय और शक्ति है कि विगत काल प्रवाह की स्मृतियों का बोझ ढोता फिरे? नया सूरज उगता है और नई समस्यायें पैदा होती हैं। जगहें बदलती हैं और नई-नई चीजें आती हैं किन्तु अधिकतर लोग वर्तमान काल में जीते हैं।

यह सब होते हुए भी कभी हमारे जीवन में ऐसी घटनाएँ घट जाती हैं जिन की याद सदा के लिए मन पर अंकित हो जाती है। जिस तरह पत्थर की लकीर को मिटाना संभव नहीं होता जो हमारे मर्म को छू जाती हैं। पीछे मुड़कर देखते ही ऐसे अनेक स्थान और अनेक चित्र मानस पटल पर उभर आते हैं।

२९ अक्टूबर १९६९ को जनकपुर धाम जाने को प्रस्थान किया। सह-यात्रियों में श्री अरविन्द कुमार 'अरविन्द', श्री महेश एवं श्री राजीव थे। प्रभात काल में श्री विष्णु देव बाबू के यहाँ मैं गया। अरविन्द की तबीअत गत रात्रि से ही अस्वस्थ हो गयी थी। कुछ देर उनके पास बैठा। महेश अपनी गाड़ी लेकर अपने समय के अनुसार आये। कुछ देर वे भी अपने मौसा श्री अरविन्द के पास बैठे। पुनः हम दोनो मोटर से बरौनी जंक्शन स्टेशन गये। वहाँ श्री राजीव अपनी गाड़ी से पहले ही पहुँच गये थे और हमारा इन्तजार कर रहे थे। तीनों व्यक्ति स्टेशन कैटरिंग गये। चाय जल-पान हुआ। जय नगर की गाड़ी अपने समय पर खुली। समस्तीपुर पहुँचे। भोजनालय में उन्हें ले गये। भोजन हुआ। मैंने केवल चाय पी। वहां जयनगर जाने को गाड़ी बदलनी पड़ती है। गाड़ी प्लेट फार्म पर लगी। हम लोग गाड़ी में बैठे। दरभंगा, मधुबनी होते हुए गाड़ी पवने चार बजे के लगभग जयनगर पहुँची। हम लोग गाड़ी से उतरे। विश्रामालय में गये। कुछ देर विश्राम किया। तब हाथ-मुंह धोये। जलपान हुआ। श्री गणेश अपनी ससुराल नेपाल से अपने साथी के साथ आ गये थे। कुछ देर के बाद हम लोग टहलने को चले। टहलते हुए हम श्री मुन्शीसिंह के यहां गये। वे हमारे ही जिले (छपरा) के रहने वाले हैं। वहां वे इने-गिने व्यक्तियों में एक हैं।

अपने पिताजी के नाम पर वहां उन्होंने कालेज खोला जिसमें बी. ए. तक पढ़ाई होती है। उनसे भेंट हुई। उन्होंने सबको जलपान कराया। एक घण्टे के बाद हम लोग ठाकुर बाबू के यहां गये। वे भी हमारे ही जिले के निवासी हैं। लेकिन उनसे भेंट नहीं हुई। फिर टहलते हुए बाजार की परिक्रमा की। उन्होंने एक होटल में भोजन किया। फिर हम लोग स्टेशन आये। मेरे लिए एक मित्र उबाली हुई तरकारी, रोटी और गाय का दूध ले आये। भोजनोपरान्त मैं सो गया। गणेश अपने किसी सम्बन्धी के यहां सोने को चले गये।

३० अक्टूबर, १६६९ की सुबह में चार बजे मैं उठा, महेश को उठाया और फिर राजीव को। सभी व्यक्ति स्थान-पूजा पाठ से निवृत्त हो तैयार हो गये। जयनगर स्टेशन से सदा पश्चिम तरफ नेपाल सरकार का रेलवे स्टेशन है। हम तीनों वहां पहुंच गये। बाद में गणेश भी तैयार होकर अपने साथी के साथ स्टेशन आ गये। जयनगर से जनकपुर धाम १८ मील दूर है। वहां की गाड़ी तथा लाइन बहुत छोटी है। जिस तरह से आरा से सहसराम तक लाइन रेलवे है उसी तरह का नेपाल रेलवे भी है।

जयनगर से जनकपुर धाम के बीच खजुरी, महिनाथपुर और परवाहा इत्यादि शिलीगोड़ी से दार्जिलिङ्ग तक हैं। जयनगर से जनकपुर धाम पहुँचने में तीन घण्टे लगते हैं। अपने रुपयों से नेपाली रुपये भुना लिये थे। जयनगर से जनकपुर धाम के लिए पांच टिकट लिये। गाड़ी के डब्बे में हम पांचों व्यक्ति जाकर बैठे। गाड़ी और इंजिन खिलौने-जैसी लगती थी। धुक-धुक-छुक-छुक करती हुई तीन घण्टों में जनकपुर धाम पहुँच गयी।

१६२८ ई० में जब मैं पहले-पहल श्री चन्द्रचूड़देवजी के साथ दरभंगा (भिटकी गांव से) मोटर से जनकपुर धाम गया था। तब वहाँ न कोई दूकान थी न बाजार। न सड़क थी न रेलगाड़ी। नदी, नाले, जंगल आदि लांघते हुए बड़ी कठिनाई से जनकपुर धाम पहुंचे थे और जानकी माता के दर्शन कर लौट आये थे।

तब केवल जानकी माता का मन्दिर था और दो-चार मकान। मन्दिर के चारों ओर बहुत गन्दगी थी। लेकिन इस बार ऐसा लगा कि जनकपुर धाम का कायाकल्प हो गया है। स्टेशन अच्छा है, बाजार भी अच्छा है। जो सामान चाहें खरीद लें। स्टेशन से बाजार तक सड़क भी बहुत चौड़ी और अच्छी है। एक मारवाड़ी ने वहां एक बहुत बड़ा होटल भी खोला है। पर्याप्त साफ-स्वच्छ दुमंजिला भवन, भोजन की व्यवस्था सन्तोषप्रद और आवासीय कमरे भी हवादार। यह वही स्थान है जहां राजा जनक ने अपनी प्यारी

युगुओं जानकी के विवाह के लिए देश के कोने-कोने से लोगों को, जनकपुर धाम से सतरह मील दक्षिण, बुलाया था यह कह कर कि जिस शिव-धनुष को उठाकर सीता प्रतिदिन उस स्थान की पवित्र भूमि को गोवर-मिट्टी से लीपा करती है उसे जो कोई उठा लेगा, जानकी का विवाह उसी के साथ करूँगा। यह धनुष जनकपुर रोड के पास ही है। वहाँ आज भी जमीन खोदने पर पुरातत्त्व वेत्ताओं के लिए बहुत-सी चीजें मिलती हैं। सीता वहाँ प्रतिदिन पूजा करने को जाती थी। राजा जनक के आमंत्रण पर देश-विदेश के सब भूप आये थे। स्वयंवर रचित हुआ।

गुरु विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण भी आये। रावण आदि ने वहाँ अपनी सारी शक्ति लगा दी। किन्तु शिव धनुष टस से मस तक न हुआ राजा जनक घबराये कि अब सीता कुमारी ही रह जायेगी। रामचन्द्र जब धनुष उठाने को चले तब सब लोग मजाक करते थे कि यह षोडस वर्षीय बालक धनुष कैसे उठायेगा जब सब दिग्गज-उद्भट वीर हार गये थे। रामचन्द्र ने विश्वामित्र का चरण-स्पर्श किया और धनुष के निकट गये। उन्होंने एक बार अपने पूर्वजों का स्मरण किया और धनुष की ओर हाथ बढ़ाये। बात की बात में धनुष के दो टुकड़े हो गये। राजा जनक की खुशी का परावार नहीं था। सभी लोगों ने आसन ग्रहण किया। सीता स्वयंवर में पधारी राम की ग्रीवा में पुष्पहार डाला। वे एक दूसरे के सौहार्द में बंध गये।

हम लोग सर्वप्रथम जानकी माता के मन्दिर में गये और सीता माता के साथ और देवी-देवताओं के दर्शन किये। वहां से हम फिर बाजार में घूमे। भोजन का समय हो गया था। हम सब उसी बड़े होटल में गये। पाँचों व्यक्तियों ने भोजन किया। मैं कुछ शान्ति महसूस कर रहा था। महेश ने कहा—"बाबा, आप अब यहीं आराम कीजिए—तब तक हम लोग एक बार फिर बाजार से घूम आते हैं।',

उसकी यह अपना पन-भरी मधुर बात मुझे जँच गयी। मैंने उससे कहा—"अच्छा, तुम लोग जल्दी आ जाना।" होटल के मालिक ने मुझे ऊपर ले कमरे में भिजवा दिया। मैं वहाँ आराम करने लगा एक घण्टे के बाद मेरी नींद टूटी। देखा कि तब कोई नहीं आया था। हाथ-मुंह धोकर मैं नीचे गया। मैनेजर से उन लोगों के विषय में पूछा—"अभी तक वे नहीं आये हैं?" मैंने उन्हें कहा कि जब वे आयें तब उन्हें स्टेशन ही भेज देंगे। मैंने उन्हें अपनी एक पुस्तक 'जगजीवन' दी। गर्मी खूब थी। रिक्शा

लिया और स्टेशन आया। बाहर एक कुर्सी थी। उसी पर बैठकर उन लोगों की प्रतीक्षा करने लगा। एक घण्टे के बाद वे लोग आये। गाड़ी खुलने का समय हो रहा था। टिकट खरीदने गया तो नेपाली रुपये मांगे गये। लेकिन मेरे पास नेपाली रुपये नहीं थे। उन लोगों के पास मैं गया। उन्होंने कहा कि दुकानदारों के पास नेपाली रुपये होंगे, वहीं हम भुना लें। लेकिन किसी दुकानदार के पास नेपाली रुपये नहीं थे। तब महेश ने राय दी कि बैंक से रुपये भुना लायें। रिक्शा वाले ने बैंक के लिए एक रुपये की माँग की जब बाजार से छह आनों में ही स्टेशन आया था। बैंक बिल्कुल निकट था महेश ने कहा—"बाबा, हम बैंक को जाते हैं।" उस के साथ मैं भी चला रास्ते में एक टी. टी. ई से भेंट हुई। उससे बात हुई। उसने कहा कि चलिये, मैं रुपये भुना दूंगा। हम लोग लौटे। गाड़ी में बैठे। टिकट खरीदे। रास्ते में खूब चेकिंग होती थी। दो बजे गाड़ी खुली। चार बजे हम जयनगर पहुंच गये। वहाँ रेलवे बुक स्टाल का निरीक्षण किया। सब की राय हुई कि जो गाड़ी छ: बजे खुलेगी, उसी से हमें चलना चाहिए।

गाड़ी लगी हुई थी। स्टेशन के अधिकारियों मित्रों को प्रणाम किया और गाड़ी में बैठ गये। आठ बजे हम लोग दरभंगा पहुँचे। सभी को चाय पिलायी। फिर गाड़ी खुली। हम लोग दस बजे समस्तीपुर पहुँचे। वहाँ होटल में गये। शंभु बाबू से भेंट हुई। सभी ने भोजन किया। बरौनी आने वाली गाड़ी में हम लोग बैठ गये। जिस डिब्बे में हम थे उसमें एक दरोगा जी भी थे। बरौनी पहुँचे। स्टेशन के बाहर आने पर टैक्सी ली। टाउनशिप के पास गणेश उतर गये। इसके बाद हम महेश के घर में गये। वहाँ वे उतर गये। जब वे मकान के अन्दर चले गये तब मैं डेरे में आया। पलँग वाले कमरे में राजीव (प्रिन्स) सो गये। मैं बाहर वाले कमरे में सोया। अधकच्ची नींद में था कि फोन की घण्टी टनटनायी। फोन उठाया। वासुदेव बाबू ने अपने पुत्र के तिलक-संस्कार में पहुँचने के लिए आमंत्रण दिया। मैंने उन्हें स्वीकृति दी। सुबह मैं उठा। स्नान किया और पूजा भी। तब राजीव को जगाया। वे भी स्नान आदि से निवृत्त हो गये। तब दोनों ने जलपान किया। चाय पी। राजीव से जाने की आज्ञा ली। उन्होंने कहा—'जाइए, तब गाड़ी आयेगी मैं भी चला जाऊँगा।

कछवाहा साहब को गाड़ी के लिए फोन कर दिया था।' मैं उन से आज्ञा लेकर आठ बजे द्वारका बाबू और रामदयाल बाबू के साथ गोमरी चला गया।

●

हरिहर क्षेत्र

भारतवर्ष के धर्म क्षेत्रों में हरिहर क्षेत्र का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है प्रतिवर्ष पूर्णिमा के लगभग (नवम्बर में) एक मास तक यहां एक बहुत बड़ा मेला लगा करता है। यह मेला भारतवर्ष का सबसे बड़ा मेला माना जाता है। पूर्व काल में वैष्णव और शैव सम्प्रदायों में प्रायः संघर्ष होता रहता था। वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी विष्णु अर्थात् हरि के उपासक और शैव शिव अर्थात् हर के उपासक हैं। एक बार दोनों सम्प्रदायों के प्रतिनिधि का एक महासम्मेलन उस स्थान पर हुआ था जो अब हरिहर क्षेत्र या सोनपुर के नाम से प्रसिद्ध है। उसी सम्मेलन में यह निर्णय हुआ कि 'हरि' और 'हर' दोनों सर्वेश्वर भगवान के ही स्वरूप हैं। सर्व शक्तिमान भगवान् ही ब्रह्मा के रूप में सृजन, विष्णु के रूप में पालन और महेश रूप में संहार की लीलाएँ करते हैं। दोनों ने वहीं अपने संघर्ष का अन्त किया। और इसी निश्चय के अनुसार श्री हरिहरनाथ की प्राण प्रतिष्ठा हुई। उसी समय से वह स्थान हरिहर क्षेत्र के नाम से विख्यात हुआ।

वेदव्यास जी ने महाभारत में भी गज और ग्राह की कथा का वर्णन किया है। नाना पुराण में भी इसका वर्णन है। गज और ग्राह का युद्ध स्थल हरिहर क्षेत्र ही है। श्री हरिहरनाथ जी के मन्दिर नारायणी अर्थात् गंडक नदी के उस पार कोनहार घाट है जो अब हाजीपुर (मुजफ्फरपुर जिला) में पड़ता है। इसी कोनहार घाट पर गज और ग्राह का युद्ध हुआ था। उसी गज की पुकार सुनकर भगवान् विष्णु वहां स्वयं पधारे थे। एक दिन गजेन्द्र रूपी इन्द्र दमन राजा अपनी हथिनियों के साथ कोनहार घाट पर जल पीनें गए। ज्योंही गजेन्द्र ने जल में प्रवेश किया त्योंही ग्राह रूपी हा हा गन्धर्व ने उनका पैर पकड़ लिया। गजेन्द्र की सहायता के लिए सभी हथिनियों ने मिल-कर छुड़ाने का प्रयत्न किया फिर भी वे पानी से बाहर न निकाल सके। जब वे डूबने लगे तो उन्होंने भगवान को पुकारा और उनकी करुणा पुकार सुनते ही भक्त वत्सल भगवान् ने कार्तिक पूर्णिमा को स्वयं पधार कर ग्राह का वध किया और गजेन्द्र के प्राण बचाये। इसी कारण कार्तिक पूर्णिमा के दिन

यहां स्नान करने का महत्व अधिक समझा जाता है। पद्मपुराण में यह वर्णन है कि शालीग्रामी नदी नारायणी अथवा गंडक नदी के नाम से प्रसिद्ध है। और उक्त धर्म क्षेत्र को हरिहर क्षेत्र कहते हैं। कुंभ, बाराह क्षेत्र, कुरुक्षेत्र की तरह हरिहर क्षेत्र भी संसार के धर्म क्षेत्रों में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पुराणों में इस धर्म क्षेत्र का वर्णन महा क्षेत्र के रूप में किया है।

धार्मिक एकीकरण की ओर संकेत करते हुए श्री तुलसीदास ने कहा है—"हरिहर में नहीं भेद गोसाई।" विकास के लिए प्रत्येक प्रकार का भेद भाव को मिटा देना जरूरी है। हमें न केवल धार्मिक क्षेत्र में ही, वल्कि सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक, राजनीतिक, साहित्यिक पारिवारिक आदि सभी क्षेत्रों में भी हरिहर के नाम द्वारा अभिव्यक्त एकता के आदर्श को अपना कर उन्नति की ओर अग्रसर होना चाहिए। एकता ही शक्ति है और विभेद में विनाश का बीज निहित है। आज हमारा देश स्वतन्त्र है। इसलिए हमें एकता की ज़रूरत और भी अधिक है। नाना प्रकार की विच्छिन्नकारी शक्तियां हमारी एकता पर आघात कर रही हैं। हम जनता को उन सब से बचकर रहना है। क्योंकि जनता ही सरकार है। इसलिए जनता अच्छी सरकार चाहती है न अच्छी पार्टी। जनता अपने आप को समझे, अपनी शक्ति पहचाने, अपनी दी हुई चीजों पर निगरानी रखे, इसी में हम जनता का स्वार्थ है और लोक कल्याण भी। इस दृष्टि से हरिहर क्षेत्र के मेले का एक विशेष महत्व है। इस लिए प्रतिवर्ष अनेक प्रकार के सभा सम्मेलनों का आयोजन, विभिन्न सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाओं की ओर से किया जाता है। साहित्यिक संस्थायें भी भाषण, कवि सम्मेलन आदि के द्वारा मेले की शोभा वढ़ाने के साथ-साथ सामाजिक जीवन में सरसता का संचार करती हैं। साहित्यिक और धार्मिक महत्व के अतिरिक्त इस मेले का एक विशेष महत्व है। एक महीने तक यह मेला विविध प्रकार की वस्तुओं तथा हाथी, घोड़े, बैल, ऊँट, पशु पक्षी, गाछ वृक्ष, गाय, भैंस आदि पशुओं के क्रय-विक्रय का विशाल केन्द्र बना रहता है। वहां देश के कोने कोने से व्यापारी आते हैं, और एक महीने तक बड़े ही ठाट बाट से अपनी अपनी औकाद के लायक मस्ती में रहते हैं। उस समय हरिहर क्षेत्र में दूध की कमी नहीं होती और न सवारी की ही। भारत सरकार की स्पेशल रेलगाड़ी यात्रियों की सुविधा के लिए कुछ दिनों तक चलती है। ब्रिटिश सरकार के समय यह मेला धूल धुएँ और वेश्याओं का निवास बना रहता था। लेकिन आजाद देश होने के बाद वेश्याओं का और धूल का तो अब वहां नाम तक नहीं रहता। लेकिन संध्या होने ही

मेले में धूएँ जरूर छा जाते हैं।

भारत में कुछ स्थानों का बहुत महत्त्व है, धार्मिक, पौराणिक और ऐतिहासिक भी। हम इन पुण्य भूमियों के दर्शन करते है, इनकी मिट्टी अपने मस्तक पर लगाते हैं केवल इस लिए कि हमारे पूर्वजों ने, कुछ ऐसे कार्य किये है जो दूसरे लोगों से नहीं होते। उनकी स्मृति में हम वहाँ जाकर नतमस्तक होते हैं और अपने जीवन का बल-तेज जगाते हैं। सोनपुर भी भारत में ऐसा ही स्थान है जहाँ हरिहर क्षेत्र का मेला लगता है। यह मेला भारत में सबसे बड़ा मेला है। चूंकि सोनपुर से केवल सोलह कोस पश्चिम सिताबदियारा मेरा गाँव है जो गंगरसरयू के संगमस्थल पर अवस्थित है, इसलिए मैं बचपन से ही कार्तिक पूर्णिमा को इस मेले में जाता रहा हूँ।

छपरे से सुबह की गाड़ी से सोनपुर जाता था और मेले में घूम कर सन्ध्या में गाड़ीसे छपरा लौट जाता था। तब सोनपुर से छपरे तक का रेल भाड़ा था मात्र चार आने। उस समय किसी हलवाई की दुकान में या होटल में हम पाँच पैसे में पेटभर पूरी-मिठाई या भात-दाल के साथ दो-तीन तरकारियाँ और घी खा लेते थे। एक रुपये में तीन सेर घी मिलता था, ३६ सेर बासमती चावल और गेहूँ मिलते थे। पांच आने में एक टीन किरासन तेल। एक पैसे में पेट भर कचौड़ियों और जलेबियों से लोग जलपान करते थे।

उन दिनों सोनपुर मेले में धूलों और धुओं की बौछार होती थी। जो भी व्यक्ति दिन भर मेले में घूमता था, बिना स्नान किये या हाथ-मुंह धोये आराम से रातमें सो नहीं सकता था।

१९२२ ई० में जब जिला बोर्डों की व्यवस्था हम भारतीयों के हाथों में आयी तब पानी का कुछ इन्तजाम हुआ जिससे सड़कें पटती थीं। जब देश स्वाधीन हुआ तब सोनपुर मेले में सड़कों पर खूब पानी पटाया जाने लगा। सभी सड़कें पक्की हो गयीं।

शायद १९१७ ई० की बात है। स्व० रामधारी बाबू ने अपने गाँव से एक पत्र मुझे लिखा और मुझे सोनपुर मेले में बुलाया साहित्य-सम्मेलन के श्रीगणेश करने में हाथ बँटाने के लिए। मैं अपने साथियों-सहित सोत्साह मेले में गया। उसी मेले में बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना हुई। इसका कार्यालय श्री रामधारी बाबू ने मुजफ्फरपुर में रखा। बहुत दिनों के बाद यह संस्था पटने में लायी गयी — बिड़ला मन्दिर से सीधे दक्षिण जहाँ सड़क का अन्त होता है। कोने वाले मकान में उसका कार्यालय खुला। रामधारी बाबू

आत्मीयता की मूर्ति थे। पत्रों में वे अपनी असीम आत्मीयता उड़ेल देते थे। जब उनसे भेंट होती थी मैं उस पत्र की चर्चा उनसे अवश्य करता था। कभी-कभी श्री मथुरा प्रसाद दीक्षित के सामने उस पत्र और सोनपुर की बातें होती थीं। दीक्षित्त जी मेरी प्रशंसा के पुल बाँध देते थे। जब मैं रामधारी बाबू से उस पत्र का जिक्र करता था तब वे फर्स्ट क्लास में की गयी एक यात्रा का उल्लेख अवश्य करते थे जिस में हम दोनो साथ थे। उस समय सोनपुर में स्टेशन मास्टर मिस्टर लूकस थे। उनकी याद मुझे आ जाती है। जब कभी इस प्रकार की यात्रा का कोई जिक्र करता है, मुझे राज्यसभा के सदस्य श्री गंगाशरण सिंह तथा डा० सुधांशु के साथ सोनपुर से बरौनी तक की गयी यात्रा स्मृत हो जाती है। दीक्षित जी ने 'सुहृद' नामक पुस्तक में लिखा है—"सुहृद जी बिहार हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के जन्म काल से ही इसके सदस्य हैं।"

पहले मैं प्रतिवर्ष सोनपुर मेले में जाता था और वहाँ आठ-दस दिनों तक अविराम रूप में रहता था। हम लोगों का अपना कैम्प रहता था। सुबह से शाम तक मेले का चक्कर। उन दिनों भारत की अच्छी-अच्छी थियेटर-कम्पनियाँ भी मेले में आती थीं; जैसे, अल्फ्रेड, किर्लोस्कर आदि। हम लोग शाम में भोजन कर लेते थे और थियेटर देखने को चले जाते थे। हम रोज नया-नया खेल देखते थे।

१४ नवम्बर, १९५१ ई० को सोनपुर मेले के डाक-बंगले के अहाते में एक विराट् कवि-सम्मेलन हुआ था। इस की अध्यक्षता मैंने की थी। इसमें भारत के बड़े-बड़े कवि आये थे—बेढब बनारसी, डा० शंभुनाथ सिंह, लक्ष्मीनारायण शर्मा 'मुकुर', रघुनाथ पाण्डेय 'प्रदीप' आदि। वहीं दो होनहार नवयुवक साहित्यकारों से प्रथम परिचय प्राप्त हुआ था। एक थे कवि श्री नन्दकिशोर 'नवल' और दूसरे थे चित्रकार पाण्डेय सुरेन्द्रा। दोनों अपने-अपने क्षेत्र बाजी मारे हुए हैं। पहले इन दिनों बी० एन० कालेज (पटना) के प्राध्यापक और दूसरे आर्ट स्कूल (पटना) के प्राचार्य।

एक दिन विष्णुदेव बाबू ने श्री विजय प्रतापसिंह (एस० पी०) से सोनपुर मेले में चलने की चर्चा की। मैं दोनो की बातें सुनता रहा। दोनों ने निश्चय किया कि हम लोग कातिक पूर्णिमा के आठ दिनों के उपरान्त मेले में चलें। विजय बाबू ने कहा—'सोनपुर मेले में श्री पुरी (एस० पी०) का भी कैम्प रहता है। उन्हीं के साथ ठहर जाइएगा।' मैंने अरविन्द और महेश को भी

चलने को कहा। २२ नवम्बर, १९६९ ई० को मैं दिल्ली गया। २३ नवम्बर, १९६९ ई० को मैं जगजीवन बाबू, दिनकर जी, श्री गंगाशरणसिंह और अनेक मंत्रियों से मिला। कुछ बातें कीं। जब मैं मुहद्दनगर लौटा तब अरविन्द और महेश से मिलने का जिक्र किया। विष्णुदेव बाबू ने निश्चय किया कि ३ दिसम्बर, १९६९ ई० को हम लोग मोटर से मेले में चलें। ३ दिसम्बर १९६९ ई० को प्रातःकाल में स्नान-पूजा-जलपान आदि के बाद मैं विष्णुदेव बाबू के घर गया। महेश को मोटर भिजवा कर बुला लिया। अरविन्द भी तैयार थे। जौली मोटर पर साथ चलने का हठ करने लगे। मैंने उनको नौकर के साथ द्वारका बाबू की ओर मेलने को भेज दिया। गुड्डू तैयार होकर विष्णुदेव बाबू के साथ मोटर में बैठ गया। मैं उसे साथ ले जाना नहीं चाहता था। लेकिन उसने एक न मानी न सुनी। अन्त में विष्णुबाबू, अरविन्द, महेश और गुड्डु (जितेन्द्र) के साथ मोटर से सोनपुर के लिए मैंने प्रस्थान किया। बीहट के पास गाड़ीमें किंचित् गाड़ी में खराबी आ गयी। हम लोग गाड़ी द्वारका बाबू के पेट्रोलपम्प पर ले गये। गाड़ी की खराबी दूर हो गई। पुनः एक घण्टे के उपरान्त हम लोग चले। मुजफ्फरपुर में हम लोगों ने भोजन किया। हाजीपुर होते हुए हम दो बजे सोनपुर पहुँचे। मुजफ्फरपुर से हाजीपुर तक सड़क अच्छी नहीं थी।

जहाँ पहले नखास का स्थान था वहीं हम लोगों ने गाड़ी खड़ी कर दी। वहां से हम पैदल हरिहर बाबा के मन्दिर की ओर चले। रास्ते में परिचित लोगों से भेंट होती गई। गुड्डू जब थक जाते थे तब मैं उन्हें अपनी गोद में उठा लेता था। मन्दिर में जाकर हरिहरनाथ के दर्शन किये। पुनः हम वहां से चले। महेश, अरविन्द और गुड्डू ने कुछ वस्तुएँ खरीदीं। फिर हम लोग कश्मीरी वस्त्रों की दुकान में गये। यह दुकान कश्मीर से मेले में प्रतिवर्ष आती है। तुश, दुशाले, मफलर और कुरते के कपड़े खरीदे। वहाँ से मेले में घूमते हुए आये। मोटर से मेले के चारों ओर उन लोगों को घुमाया। स्टेशन पहुंचे। रेलवे भोजनालय में गये। जगदीश बाबू ने बड़े प्रेम से चाय-टोस्ट बनवाये। हम लोगों ने जलपान किया, चाय पी और कुछ टोस्ट गुड्डू के राह खर्च के लिए रख लिये। वहां से हम लोगों ने बेगूसराय के लिए प्रस्थान किया। पुल पर कुछ देर लगी। जब एक ओर आने वाले सब वाहन आ गये तब हम लोग चले।

हाजीपुर में गाड़ी में तेल भरा। कुछ दूरी तय करने के पश्चात् गाड़ी में

पुनः कुछ खराबी आने लगी। बड़ी कठिनाई से सात बजे मुजफ्फरपुर से शिव-शंकर बाबू के पेट्रोल पम्प पर पहुंचे। कारीगर ने इंजन के हिस्से खोलकर देखे। उसने कहा कि मैं एक घण्टे में सब कुछ व्यवस्थित कर दूंगा। वह हिस्सों को अपनी दुकान में ले गया। उसने आरमेचर बनाया और नौ बजे गाड़ी में फिट किया। गाड़ी फिर भी खराब रही। इसलिये उसने फिर हिस्से खोले और उन्हें अपनी दुकान में ले गया। गुड्डू गाड़ी में चुपचाप लेटा रहा। विष्णुदेव बाबू कारीगर के पास बैठकर आरमेचर बनवाने लगे। मैं गुड्डू के साथ ही गाड़ी में बैठा रहा। जब दस बज गये तब गुड्डू ने मुझे कहा—"बाबा ममी बुला रही है।" उसे माँ की याद आई। फिर वह सो गया। अन्त में गाड़ी में नया पार्ट लगाया गया। एक बजकर बीस मिनट पर तैयार हो गई गाड़ी। हम लोग डाक बंगले में गये। कहीं जगह खाली नहीं थी। महेश और अरविन्द को राजकुमार के डेरे में पहुंचा आये। वे दोनों वहीं सो गये। मैं चला आया। गुड्डू विष्णुदेव बाबू के साथ मोटर पर ही सो गया। सुबह साढ़े चार बजे सब व्यक्ति तैयार हो गये और बेगूसराय के लिये प्रस्थान किया। हम लोग छह बजे प्रातःकाल में बेगूसराय पहुंच गये। ईश्वर की असीम अनुकम्पा थी कि हम लोग सही सलामत मुजफ्फरपुर तक पहुंच गये थे। यदि रास्ते में ही गाड़ी रुकती तो हमें बहुत तकलीफ होती। ऐसी बातें आदमी कभी नहीं भूलता और संस्मरण रूप में पाठकों के सामने आती हैं।

●

मथुरापुरी

जिस स्थान पर कंस का कारागार था उसी स्थान का नाम कटरा केशव देव कहलाता है।

विश्व के रंग मंच पर अनेक बार उलट-फेर हुए, विभिन्न सभ्यतायें और संस्कृतियाँ आविर्भूत हुईं, किन्तु जन मानस में श्रीकृष्ण का स्थान ज्यों का त्यों बना रहा। उनकी स्मृति और पूजा बढ़ती ही गई। वे कोटि कोटि व्यक्तियों के परमाराध्य बन गये। असंख्य जनों ने उनके चरणों में अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया और उनका नाम ले लेकर अपने जीवन को धन्य बनाया।

श्रीकृष्ण ने कंस के कारागार में जन्म लेकर न केवल वासुदेव-देव को बन्धन मुक्त किया, वरन उस काल में पृथ्वी पर फैले हुए समस्त अत्याचारियों का अन्त कर दिया। उनका अवतार ही दुष्टों का संहार, सज्जनों का परित्राण, अधर्म का विनाश और धर्म का अभ्युत्थान करने के लिए हुआ था। उनके व्यापक कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत हमारे जीवन में सभी पक्ष आ जाते हैं। उन्होंने आध्यात्मिक, धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक सभी क्षेत्रों में अलौकिक कार्य किये, तथा मानव जगत को क्रान्तिकारी विचारधाराएँ प्रदान कीं। उनकी गीता के उपदेश तो ऐसे अनमोल रत्न हैं जिनके सामने संसार के सभी मनीषी महापुरुष श्रद्धापूर्वक सिर झुकाते हैं। ज्ञान साधना के अनुसार आत्मा की अमरता का उपदेश, भक्ति-साधना के अनुसार आज्ञाकारी होने का आदेश एवं कर्मयोग के अनुसार कर्तव्य पालन का निर्देश श्रीकृष्ण ही दे सकते थे। वे सच्चे अर्थों में जगतगुरु सिद्ध हुए।

यही कारण है कि श्रीकृष्ण का जन्म वृत्त कोटि कोटि मानवों के हृदय में संजोया हुआ है। ब्रज में ललित ललाम लीलाएँ करने वाले नन्द नन्दन गोप कुमारों के स्नेही सखा प्यारे कन्हैया और अर्जुन के सतर्क सारथी जनार्दन आज भी जनमानस में वैसे ही विद्यमान हैं एवं भारतीय विचारधारा और जीवन में पूर्णतः परिव्याप्त हैं।

ब्रजमण्डल के दर्शनार्थ भारतवर्ष के विभिन्न भागों तथा विदेशों से भी असंख्य यात्री आते हैं और अध्यात्मिक शान्तिप्राप्त करते हैं। कितने ही प्रेमी भक्तों ने इस ब्रजमण्डल में श्रीकृष्ण का आलौकिक वंशी का मुग्धकारी रव सुना है, और दिव्य प्रेम का आनन्दानुभव प्राप्त किया है।

ब्रजमण्डल की यात्राओं के द्वारा भारत की विविधता में भी सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक एकता की स्थापना की जाती रही। दूर-दूर के स्थानों से आए हुए विभिन्न भाषा भाषी तथा मतावलम्वी यात्री जिनकी वेष-भूषा तथा रीति-रिवाज अलग अलग होते हैं, ब्रजमण्डल में एक साथ परिभ्रमण करते हैं और उनके हृदय एक ही आशा एवं विश्वास से अनुप्राणित रहते हैं। ब्रज के इस पुनीत स्थानों का जैसा व्यापक महत्व युग-युगान्तरों में रहा है वैसा ही महत्व अभी भी है और रहेगा।

कटरा केशवदेव नामक नाम से सटा हुआ पीतार कुण्ड नामक विशाल और सुन्दर सरोवर भी केशवदेव के कृष्ण स्थान का द्योतक है।

सब से प्रथम इस स्थान पर भगवान श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ ने अपने कुलंवदेवता की स्मृति में एक सुन्दर मन्दिर वनवाया था।

दिल्ली पर्यटन के क्रम में मथुरा स्टेशन से गुजरने के अनेक अवसर मेरे जीवन में आये हैं लेकिन मथुरापुरी और वृन्दावन की पुण्य भूमि में पदार्पण का प्रथम सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ १६५२ ई० में। मैं और डा० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' दिल्ली गये थे। हम लोग श्री जगजीवनराम जी के यहाँ ठहरे थे। विचार हुआ कि हम लोग मथुरापुरी चलें। दूसरे दिन स्वर्गीय श्री प्रभुदयाल जी से भेंट हुई।

विगत ५ मई, १६५२ ई० को—हम तीनों ने मोटर से मथुरापुरी के लिए प्रस्थान किया। हम लोग दस वजे मथुरा पहुँचे। श्री ब्रजशंकर वर्मा उन दिनों वहीं रहते थे। हम लोगों ने उनके साथ भोजन किया, कुछ देर विश्राम किया और तत्पश्चात् वृन्दावन की ओर चले। अनेक मन्दिरों की परिक्रमा की और भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र के दर्शन किये।

जहाँ पहले यमुना नदी की धाराएँ प्रवाहित होती थी वहाँ वहुत दूर तक प्रास्तरिक सोपान निर्मित हैं। पावस में यमुना नदी अपने पूर्व स्थान पर चली आती है। एक जगह कदम्व एक तरु है जिस की शाखाओं पर कुछ पटों के टुकड़े टँगे हैं। पण्डों का कथन है कि कृष्ण जी ने यमुना में अवगाहन करने वाली रमणियों के पट इस कदम्व-तरु पर ही लटकाये थे।

यह बात हमें एक पण्डे के पुत्र ने बतलायी। डा० सुधांशु जी ने उसे एक रुपया दिया। पुनः हम लोग वहां से मथुरा होते हुए आगरा गये। ताज-महल देखा। इसके पूर्व भी मैंने उसे अनेक बार देखा था किन्तु इन साथियों के साथ ताज और किला पहले-पहल देखे। रास्ते में सिकड़ी भी देखी। आगरे से श्री ब्रजशंकर वर्मा मथुरा गये। हम तीनों हाथरस स्टेशन गये। मोटर छोड़ दी। रेलगाड़ी से पटना आये। इस बार मथुरा या वृन्दावन ने मुझे अधिक प्रभावित नहीं किया। डा० सुधांशु अक्सर कहते थे कि कवियों ने करील का वर्णन अपनी कविताओं में किया है। मैंने वृन्दावन पर्यटन के क्रम में करील सर्वप्रथम देखा। यह झाड़ीदार कण्टकमय छोटा पौधा होता है। वृन्दावन की ऊसर भूमि में इसकी संख्या अगणित है।

दूसरी बार मथुरा की यात्रा मैंने जून, १९६४ ई० में की थी। यह यात्रा रेलवे बुक स्टाल सलाहकार समिति की बैठक में भाग लेने के काम में हुई थी। श्री शंभुनाथ झा, श्रीकृष्ण नन्दन सहाय आदि भी थे। रात में मैंने अपने नौकर चंचल को दूध लाने को भेजा। वह सब जगहों से लौट आया किन्तु उसे गो-दुग्ध उपलब्ध न हुआ। सुनता था कि वहां गो-दुग्ध की पयस्विनी प्रवाहित होती थी किन्तु आज वहां गो-दुग्ध उपलब्ध नहीं होता।

श्री ब्रजशंकर वर्मा के यहां और मित्रों के साथ श्री रामवृक्ष बेनी पुरी भी थे। वहां से मैं उलाव के मन्दिर में गया। यमुना का जल बहुत बढ़ गया था। इसलिए मन्दिर प्रवेश के पूर्व यमुना जल लाया। इसके अनन्तर और अनेक स्थानों की यात्रा की। इसके बाद मैं स्टेशन विश्रामालय में गया। दूसरे दिन तूफान गाड़ी आयी। मैं स्टेशन पर टहल रहा था। उसी गाड़ी में डा० सुधांशु से भेंट हो गयी। वे दिल्ली से आ रहे थे। संयोगवश गाड़ी समय से कुछ अधिक देर तक रुकी। गाड़ी खुली। डा० सुधांशु पटना गये। हम लोगों की बैठक हुई। इसके अनन्तर बिहारराज्य के भूतपूर्व मन्त्री और सर्चलाइट (पटना) के सम्पादक और मैंने पटने के लिए प्रस्थान किया। जिस गाड़ी से हम लोग मथुरा से चले उसे कानपुर में बदलना पड़ा। दूसरी गाड़ी पैसेन्जर गाड़ी थी। इसलिए उसमें बैठे-बैठे हम ऊब गये। गर्मी भी खूब थी। पुनः भोगल सराय में हमने गाड़ी बदली। तब हम लोग पटना पहुँचे।

११ दिसम्बर, १९६९ ई० को बरौनी में मैं आसाम मेल में सवार हुआ। वह गाड़ी अपने निश्चित समय से दो घण्टे देर से खुली। जाना था

मथुरा। दूसरे दिन गाड़ी में ही मैं स्नानादि से निवृत्त हो गया। हाथरस में मैंने गाड़ी बदली। छोटी लाइन की गाड़ी में जाकर बैठा। वहीं वहां के विधायक श्री प्रेमचन्द शर्मा से परिचय हुआ। एक स्टेशन तक वे मेरे साथ रहे। इसके बाद वे उतर कर अपने घर चले गये। वार्त्तालाप के क्रम में उन्होंने कहा—"मैं लखनऊ से आ रहा हूं।" गाड़ी से उतरते समय उन्होंने कहा—मेरा नाम आप विस्मृत नहीं करेंगे क्योंकि मेरे ही नाम के औपन्यासिक-सम्राट् हो गये हैं।" मैंने उन्हें कहा कि यों भी मैं आपको नहीं भूलूंगा क्योंकि आपकी प्रकृति में सरलता है और कोमलता है।

छह बजे के लगभग मैं मथुरा कैंट पहुँचा। मेरे स्वागत में वहां लोग खड़े थे। वहां मैंने एक कप चाय पी और अपना सामान रखा। पुनः उसी गाड़ी से मैं वृंदावन के लिए रवाना हुआ। साथ में श्री अग्रवाल साहब भी गये। हम वृन्दावन पहुँचे। वहाँ से हम श्री सलोने लाल शर्मा के गृह में गये। वहीं उनके आत्मज श्री सुरेश चन्द्र शर्मा थे। उनके कमरे में जब हम गये, उनके पिता जी और उनके भ्राता से हमारा साक्षात्कार हुआ। श्री सुरेश पँलग पर थे। वे अस्वस्थ थे। उनके पिताजी ने जलपान मँगवाया। हमने केवल चाय पी। हम वहाँ आधे घण्टे तक ठहरे। पुनः हम स्टेशन आये। उनके पिताजी कुछ दूर तक हमारे साथ आये। मैंने रास्ते से उन्हें लौटा दिया। उसी गाड़ी से हम लोग मथुरा जंक्शन लौटे। वह गाड़ी रात में मथुरा में ही रह जाती है, केवल उस की इंजिन मथुरा कैन्ट तक जाती है। हम लोगों ने मथुरा जंक्शन पर भोजन किया। कैटरिंग वालों ने बड़े प्रेम से बिना मशाले की तरकारी खिलायी और दूध पिलाया। अग्रवाल साहब ने मेरे साथ ही अलग टेबुल पर भोजन किया। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि हम लोग इंजिन से ही मथुरा कैन्ट चलें। उनकी बातें सुनकर मैं मन-ही-मन-हँसता था क्योंकि मैं सोचता था कि जाड़े की रात में इंजिन से चलने में हमारी क्या हालत होगी और बिना साफ किये कपड़े पहनने लायक नहीं रहेंगे। वे जब इंजिन से चलने की बात करते थे, मुझे आदरणीय बन्धु श्री गंगाशरणसिंह (संसद-सदस्य) के साथ सोहनपुर से बरौनी तक माल-गाड़ी से की गयी वर्षों पुरानी यात्रा याद आ जाती थी भोजनोपरान्त हम लोग मथुरा जंक्शन से मथुरा केन्ट तक रिक्शे से गये। हम लोगों के ठहरने के लिए गाड़ी का एक डब्बा था। स्टेशन से बिस्तर मँगवाया और और डब्बे में सोये। टी० सी० श्री चतुर्वेदी, एम० ए० ने मुझे पूछा—"स्नान के लिए गर्म पानी किस समय चाहिए?" मैंने उन्हें कहा—"साढ़े चार

बजे।" पुनः वे चले गये। चार बजे मैंने दाढ़ी बनायी और हाथ-मुंह धोकर तैयार हुआ। साढ़े चार बजे गर्म जल से स्नान किया। पूजा पाठ के उपरान्त बिस्तर बांधा। उन्हें स्टेशन ले गया। स्टेशन की एक दुकान में पेठा खाया और चाय पी। स्टेशन में ही मित्रों ने कहा कि जिस स्थान पर श्री कृष्ण का जन्म हुआ था वहां सिंहासन मिला है—चलिये, आपको दिखा लायें। साथ में अयोध्या बाबू को लिया। स्टेशन से बाहर टांगा लिया। हम लोग चले।

श्रीकृष्ण भगवान का जन्म स्थान देखने के बाद हम लोग पौने ग्यारह बजे मथुरा कैन्ट स्टेशन पर पहुंचे। ग्यारह बजे से बुक स्टाल सलाहकार समिति की बैठक शुरु हुई। श्री देवेन्द्रसिंह सेठी, सी० सी० एस० और श्री कृष्णकुमार कक्कड़, सचिव बुक स्टाल सलाहकार समिति, श्री जाटव एवं डी० सी० एस० आइजक नगर के सिवा भी सदस्य थे। बारह बजे तक बैठक हुई। सबसे विदाई ली। इसके बाद मैं सामान लेकर मथुरा जंक्शन स्टेशन पर आया। वहां भोजन किया। वहां मोतीहारी के श्री राम सुन्दर तिवारी से भेंट हुई। वे दिल्ली से आ रहे थे। उनसे खूब बातें हुई। तूफान गाड़ी अपने निश्चित समय से बहुत देर करके आयी। मैंने उससे दिल्ली के लिए प्रस्थान किया। करीब सात बजे मैं नयी दिल्ली स्टेशन पर पहुँचा। विश्रामालय में दो नम्बर वाला कमरा सुरक्षित कराया जिस के लिए सात रुपये जमा किये। कमरे में हाथ-मुंह धोया। भोजनालय में भोजन किया पुनः स्टेशन मास्टर के कमरे में गया। वहां से रेल उप-मन्त्री श्री रोहनलाल चतुर्वेदी को फोन किया। उनके पी० ए० ने कहा कि आप ग्यारह बजे के बाद आइयेगा। फिर मैं अपने कमरे में गया और सो गया।

सुबह में गर्म जल मँगवाया। स्नान किया। पूजा-पाठ से निवृत्त हो भोजनालयों में जलपान किया। वहाँ से आठ बजे श्री बी०पी० भार्गव के यहाँ गया। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मधु से भेंट हुई। उन्होंने जलपान मँगवाया। मैंने केवल चाय पी। वहाँ से एक घण्टे के उपरान्त मैं चला। वे अपने पति के साथ फाटक तक आयीं। टैक्सी से मैं श्री रोहनलाल चतुर्वेदी के यहाँ गया साढ़े नौ बजे। उनके पी० ए० से बातें होती रहीं। पौने दस बजे उनके पी० ए० ने उन्हें मेरे आने की सूचना दी। भीतर से चाय-जलपान आया। मैं ने चाय पी और जलपान लौटा दिया। दस बजे श्री चतुर्वेदी जी ने मुझे अपने पास बुलाया। ग्यारह बजे तक हमारी बातें होती रहीं। वहाँ से मैं सूचना-मंत्री

श्री आई० के० गुजराल के यहाँ गया। वहाँ से मैं जगजीवन वावू के यहाँ गया। बहुत देर तक बातें हुईं। श्री चतुर्वेदी जी ने जगजीवन वावू से कहा—"सुहृद जी बेगूसराय चलने को कह रहे हैं।" श्री जगजीवन वावू ने उन्हें कहा—"जरूर जाइए।" इसके उपरान्त चतुर्वेदी जी चले गये। मैंने एकान्त में कुछ बातें कीं। जब गुजरात के राज्यपाल महामहिम श्रीमन् नारायण अग्रवाल आये तब मैं वहाँ से चला आया। सेक्रेटरी के कमरे से दिनकर जी को फोन किया। उत्तर से ज्ञात हुआ कि वे एटा गये हैं। मैं स्टेशन गया। पहले मैंने १५ दिसम्बर, १९६९ को आसाम मेल से बरौनी जाने का कार्यक्रम बनाया था और वर्थ सुरक्षित करवा लिया था लेकिन मन नहीं रमा। मैं पुरानी दिल्ली स्टेशन गया। जनता गाड़ी के टू-टायर में वर्थ सुरक्षित कराया। वह गाड़ी रास्ते में बहुत लेट हो गयी। १६ दिसम्बर, १९६९ को दस बजे मोकाम पहुँचा। मोकाम से टैक्सी ली जिस में इक्कीस रुपये लगे। ग्यारह बजे रात में मैं सुहृद नगर पहुँच गया।

मथुरा विख्यात सप्त पुरियों में एक है। यह प्राचीनतम काल से भारतीय संस्कृति का एक प्रधान केन्द्र होने का गौरव धारण करती आई है। इनने भारतीय धर्म, दर्शन, कला, भाषा और साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

बहुत पुरातत्त्व वेत्ताओं का मत है कि वर्तमान 'व्रज' प्राचीन काल में सूरसेन जनपद की संज्ञा से प्रसिद्ध था जिसकी राजधानी मथुरा या मधुरा थी। सूरसेन का नामकरण रामानुज शत्रुघ्न के आत्मज 'सूरसेन' के नाम पर हुआ जिन्होंने कुछ काल तक वहाँ शासन किया था। "हत्वा च लवणं रक्षा मधु पुत्रं महाबलम्।

शत्रुघ्नो मथुरा नामपुरी तत्र चकार वै॥" (विष्णु पुराण—६, १२, ४)

मथुरा रामायण, महाभारत, गर्ग संहिता, अष्टादश पुराण तथा संस्कृत विभिन्न लेखों में वर्णित है। वाराह पुराण, पद्मपुराण, ब्रह्मपुराण, विष्णुपुराण और देवी भागवत में भी यह विशेष रूप में उल्लिखित है।

व्रज के इतिहास में कृष्ण का स्थान सर्वोच्च महत्त्व का अधिकारी है। उनका जन्म काल ई० पू० १५०० माना जाता है। कंस कारागार के जिस स्थान पर वसुदेव देवकीनन्दन का जन्म हुआ था वह ईदगाह के पीछे अवस्थित है। वहाँ खुदाई से प्राचीन मन्दिर के गर्भगृह और सिंहासन उपलब्ध हुए हैं। ये ज्यों के त्यों सुरक्षित हैं। सिंहासन के ऊर्ध्व भाग पर संगमरमर का एक

कलात्मक मण्डप बना दिया गया है। बरामदे और मण्डप के १४ फुट ऊंचे विशाल प्रांगण पर रेलिंग के साथ-साथ संगमरमर की फर्श लगा दी गयी है। दर्शनार्थियों के यातायात के लिए दोनों ओर सीढ़ियां निर्मित करा दी गयी हैं। एक चामत्कारिक बात यह हुई है कि गर्भगृह के ऊपर निर्मित बरामदे की भीत्ति में लगे मकराने के पत्थरों में कृष्ण की बाल लीलाओं की अनेक छवियां उभर आयी हैं जिन्हें देखने को दर्शनार्थियों का तांता बँधा रहता है। वहाँ धार्मिक सांस्कृतिक समारोह के लिए विशाल रंगमंच भी बना है जिसके द्वारा नगर की दो प्रधान मेला-समितियां जन्माष्टमी और रामनवमी में क्रमशः कृष्ण और राम की लीलाओं का आयोजन करती हैं जिन्हें देखने को लाखों व्यक्ति जाते हैं। रंगमंच के दोनों ओर पांच-पांच कमरे हैं जिनमें कार्यालय और विश्रामालय हैं।

०

सिताबदियारा—क्षेत्र

भारतवर्ष के सांस्कृतिक इतिहास में सारण जिले का अनुपमेय महत्त्व है। इसकी संस्कृति अति प्राचीन है। यह सारण प्राचीन काल में कोशलका एक महत्त्वपूर्ण अंग था। महाभारत काल में राजसूय-सम्पादन क्रम में श्रीकृष्ण, भीम और अर्जुन सिताब दियारा ग्राम की धूलों में अपनी पद-छाप छोड़ते हुए सरयू नदी पार कर मिथिला गये थे।

हिन्दू, बौद्ध और मुसलमान – सब धर्मावलम्बियों का मान्य तीर्थ स्थान 'चिरान्द' (अब अपभ्रंश 'चिरान' कहलाता है।) इस जिले में अवस्थित है। यहाँ आयुर्वेद के अमर अवलेह च्यवनप्राश के आविष्कारक ऋषि च्यवन तपस्या करते थे। रत्नपुर (अब रतनपुरा) के महाराज मयूरध्वज और उनकी धर्मपत्नी ने दीन ब्राह्मण वेश में उपस्थित कृष्ण और अर्जुन के लिए अपने पुत्र ताम्रध्वज का बलिदान कर अनुपमेय आदर्श उपस्थित किया था। भगवान बुद्ध के शिष्य आनन्द ने चिरान में समाधि ग्रहण की थी।

ईसा के लगभग साढ़े पाँच सौ वर्षों पूर्व सिताब दियारा से एक कोस उत्तर सरयू तट पर गोदाना नामक स्थान पर ऋषि गौतम तपस्या करते थे। यहाँ उन्होंने 'न्याय-दर्शन' नामक विख्यात दार्शनिक ग्रंथ रचा था। उनके आश्रम में गुरु विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण के साथ, जब जनकपुर जा रहे थे, सिताब दियारा होकर नदी पार कर विश्राम किया था।

गोदना के सन्निकट 'सिमरिया' में चौबीस गुरुओं के कारण विख्यात श्री दत्तात्रेय जी का स्थान था जिन्हें बहुत लोग अवतार की कोटि में परिगणित करते हैं। दहियाँवा में सरयू नदी के पुलिन पर ऋषि-वरेण्य दधीचि का आश्रम था जिन्होंने वृत्रासुर का वध करने को अपनी अस्थियाँ इन्द्र को अर्पित की थी। परसुरामपुर में परशुराम अपने जनक जमदग्नि के साथ निवास करते थे। उनसे द्रोणाचार्य ने 'दोन में रह कर धनुर्विद्या सीखी थी। 'शिल्हौरी' में राजा शीलनिधि की राजधानी थी जहाँ नारद को मोह हुआ था।

चिरान में 'निग्रो-ब्लैक पालिश्ड पाटरी' के जो नमूने उपलब्ध हुए हैं उनसे सिद्ध है कि यहाँ मौर्य कालीन युग का विशाल 'इम्पोरियम' था। यह अपनी व्यापारिक स्थिति की वजह से भी बहुत विख्यात था।

भारतवर्ष के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की जन्मभूमि होने का गौरव 'जिरादेई' को प्राप्त है।

सिताब दियारा ग्राम आरा रेलवे स्टेशन से पांच कोस उत्तर, बकुलहा रेलवे स्टेशन से तीन कोस पूर्व एवं रिविल गंज तथा छपरा स्टेशन से दो कोस दक्षिण है। यहां सरयू और गंगाने बिहार में प्रवेश किया है। सरयू सिताब दियारा के पूर्वी छोर पर लोहा टोले के निकट गंगा में मिल गयी है।

यहां दो प्रान्तों की सरहदें भी मिली हैं। नदियों की दुहरी धाराएँ इन सरहदों को मिटाने की चेष्टाएँ करती रहती हैं। दो नदियों के संगम स्थल पर स्थित और दो राज्यों के हिण्डोले पर झूलता यह सिताब दियारा छोटा-मोटा कसबा है जिसमें बाईस टोले हैं और पचास हजार से अधिक जनसंख्या है। क्षेत्रफल चौयालीस हजार बीघा है। इसमें भारत सरकार के छह पत्रालय हैं।

सिताब दियारा ग्राम ने बहुत रत्न पैदा किये हैं। मुसलमानी जमाने में बिहार के सूबेदार (राज्यपाल) सिताबराय इस ग्राम के ही निवासी थे। इनके नाम पर यह सिताब दियारा है। किसानों के महाकवि घाघराय का घर भी घाघराय के टोले में (जो अब अपभ्रंश होकर 'घुरीटोला' कहलाता है।) था।

विदेश से लौटने के बाद महात्मा गांधी ने अंग्रेजों से पहली लड़ाई बिहार के चम्पारन जिले में लड़ी—बाबू गोरखनाथ जी के गृह में ठहरे और अपने कार्य का श्री गणेश किया। गोरख बाबू का घर छपरा जिले के अन्तर्गत अपहर ग्राम में है। उस समय वहां महात्मा गांधी जी के साथ डा० राजेन्द्र प्रसाद, डा० अनुग्रह नारायणसिंह, श्री रामनवमी प्रसाद और श्री शंभु शरणजी का घर भी सिताब दियारा ग्राम में है। गोरख बाबू के पौत्र श्री अरुण कुमार और शंभु बाबू के पुत्र श्री शंकर शरण जी हैं। ये दोनों आई० ए० एस० हैं और भारत सरकार की सेवा में निरत हैं।

सिताब दियारा ग्राम को देश रत्न श्री जयप्रकाश नारायण ने सुशोभित किया है। अद्भुत है यह महिमान्वित गांव जहां वारि और सिकता का अपूर्व सम्मिलन होता है। यहां शस्य-श्यामला भूमि पर बाढ़ का आक्रमण है एव सृष्टि पर संहार की छाप है। यहां जो कुछ भी है यहां वालों के जीवन में अव्यक्त नहीं है। इस सिताब दियारा ग्राम में इस पुस्तक के लेखक को भी जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इसके अन्तर्गत एक खास जमीन है जो दियारा कहलाती है। यह भूमि नदियों के गर्भ में है, जैसे समुद्र के गर्भ में टापू। चारों ओर पानी-ही-पानी।

बीच-बीच में हरी-भरी बस्तियाँ। यह भूमि कुछ अजीब है और हैं यहाँ के निवासी। पूरे चार महीनों तक यह भूमि बाढ़ की क्रीडा भूमि बनी रहती है। गंगा तथा सरयू की उत्ताल लहरें चारों ओर लहराती रहती हैं। कभी-कभी जमीन कट जाती है, खेत कट जाते हैं, गाँव कट जाते हैं, घर कट कर दरिया में गिर जाते हैं और कभी नर-नारी तथा मवेशी भी लहरों में बह जाते हैं।

गंगा और सरयू भी उतार पर आती हैं, बाढ़ भी खत्म होती है और बाढ़ के साथ-ही-साथ खत्म हो जाती हैं खेतों की मेढ़ें। दियारे के लोग अपने दुस्साहस और दबंगपन के लिए पर्याप्त विख्यात हैं। गंगा और सरयू के जल उतार के बाद खेतों में गेहूँ, चने, मटर, जौ, सरसों आदि की फसलें जब लहराती हैं तब देखने लायक समाँ होता है। आबादी के बाद भी कुछ जमीन बेकार पड़ी रहती है जहाँ कास, मूँज और घास के बाद भी मीलों रेगिस्तान की तरह बालू-ही-बालू दिखाई पड़ती रहती है। बची हुई जमीन में घासें लहराती हैं—जिनमें गायें-भैंस चरती रहती हैं। गेहूँ की रोटी और गायों-भैंसों का घी-दूध खा-पी कर आदमी यहाँ सतरह-अठारह साल में ही तगड़ा जवान बन जाता है।

बिहार की सुपुष्ट एवं सुन्दर मनुष्यों के नमूने देखने हों तो जा कर सिताब दियारा देखना चाहिए। दो नदियों का संगमस्थल भारत में स्वभावतः तीर्थ भूमि का सम्मान प्राप्त कर लेता है। जहाँ धाराएँ मिल कर एक हो जायें वह स्थल क्यों न पूत-पुण्यमय समझा जाय? सिताब दियारा ग्राम में उत्तरी भारत की दो प्रसिद्ध नदियों का संगम है जहाँ घाघरा लहराती हुई आकर विशाल हृदय जाह्नवी गंगा से आ मिली है।

महाकवि कालिदास ने कुछ नदियों के संगम का सजीव वर्णन किया है। उन्हें प्रयागी गंगा-यमुना-सरस्वती-संगम विशेष प्रिय था। रघुवंश (६, ४८) में इसका संकेत है और (१३-५४-७५) त्रिवेणी का हृदयग्राही वर्णन है। उनका विश्वास है, इसमें अवगाहन करने से अक्षय पुण्य प्राप्त होता है और तत्त्व-ज्ञान के बिना भी स्नात व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होता। यह संगम 'मेघदूत' और 'विक्रमोर्वशीय' में भी वर्णित है। इस क्रम में गंगा-शोण-संगम का भी वे स्मरण करते हैं जहाँ शोण की क्षुब्ध-वर्तुलाकार धाराएँ गंगा के प्रशान्त जल में लीन होती हैं। यह संगम हरदी छपरा ग्राम के निकट है। इसी प्रकार उन्होंने गंगा-सरयू-संगम का भी वर्णन किया है जो सिताबदियारा ग्राम के पास है। उन्होंने अज का उदाहरण देते हुए कहा है कि इस संगम पर मृत्यु अमर होती है।

●

पहाड़ी नगरों का मुकुट दार्जिलिंग

दार्जिलिंग अप्रतिम सौन्दर्य-नगर है। यह हिमाद्रि की श्रेणियों पर स्थित है। यह ६००० फुट ऊंचा है। यह पश्चिम बंगाल के अन्तर्गत है। आप सिलीगुड़ी स्टेशन पर उतरिये या बागडोगरा हवाई अड्डे पर। दोनों स्थानों से करीब-करीब दो घण्टों में आप दार्जिलिंग पहुंच जायेंगे।

१ अगस्त, १९४६ ई० में मैं बेगूसराय से दार्जिलिंग के लिए रवाना हुआ अवध तिरहुत रेलवे की एक्सप्रेस गाड़ी ९ बजकर दस मिनट पर बेगूसराय पहुंची। यह कम विस्मयकारिणी बात नहीं थी कि वह निश्चित समय पर पहुंची थी। मैं अपने साथियों से विदाई ले गाड़ी में चढ़ गया। कुछ देर के बाद गाड़ी अपनी निश्चित गति से दौड़ने लगी। बिहपुर स्टेशन से कुछ दूर आगे बढ़ने पर गाड़ी इंजिन की बेढंगी चाल की वजह से उलटते-उलटते बची। इंजिन के पहिये पटरी से उतर लकड़ी की पटरियों और रोड़ों को काटते-काटते कुछ दूर आगे जाकर जमीन में धंस गये। हम लोगों की खुश किस्मती थी कि हम लोग एक धक्का खाकर ही बच गये। कटिहार से पश्चिम की ओर आने वाली गाड़ी ही कटिहार को भेज दी गयी। हम लोग कुशलपूर्वक कटिहार पहुंचे।

छह बजे शाम में श्री सुधांशु जी पूर्णिया से कटिहार पहुँचे। उनके पहुँचने का निश्चित समय यही था। मैं उनकी प्रतीक्षा में पहले से वहां उपस्थित था। ९-२० बजे रात में बी० ए० रेलवे की गाड़ी से हम लोगों ने कटिहार से प्रस्थान किया। तीन बजे रात में पार्वतीपुर में दार्जिलिंग मेल पकड़ कर हम लोग छह बजे सुबह में सिलीगुड़ी पहुंचे जहाँ से दार्जिलिंग ५१ मील दूर है। यह दूरी चक्कर काटती हुई रेलवे लाइन तथा पक्की सड़क की है। कौआ-उड़ान से दार्जिलिंग २०-२२ मील से अधिक दूरी पर न होगा।

सिलीगुड़ी से पहाड़ पर चलने वाली गाड़ी बहुत छोटी है और धुक-धुक छुक-छुक कर बहुत धीरे चलती है सिलीगुड़ी से दार्जिलिंग तक गाड़ी से पहुंचने में जहाँ छह घण्टे लगते हैं वहाँ मोटर से दो घण्टे। दार्जिलिंग-हिमालय रेलवे को छोड़ कर हम लोग मोटर से चले। सिलीगुड़ी से ६ मील आगे

बढ़ने पर पहाड़ी की चढ़ाई शुरु होती है। मोटर और रेलवे ट्रेन के पथ लगभग साथ-ही-साथ हैं। ऊँचाई पर चढ़ने के लिए कहीं रेलवे ट्रेन लम्बा चक्कर काटती है और कहीं आगे-पीछे होकर चलती। कहीं-कहीं रस्सी की गिरह की तरह फन्दा बनाकर वह आगे बढ़ती है। पहाड़ पर सड़क बनाने में करोड़ों रुपये खर्च हुए होंगे और आभियंत्रिक चातुर्य का कहना क्या! यहाँ नैसर्गिक दृश्य अद्‌भुत है —— विचित्र हैं। वे दृश्य हैं। उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। स्थल-स्थल पर निर्झर झरते हैं। घने जंगलों को काट कर जो सड़क बनायी गयी उसकी शोभा अवर्णनीय है। बरसात में बादल के खण्ड हवा का सहारा लेकर इर्द-गिर्द आते-जाते रहते हैं। कभी वे घाटी की गहराई में बनते दृष्टिगोचर होते हैं और कभी वे ऊपर उठकर हम लोगों को घेर लेते हैं। गिरि, विपिन, निर्झर, वारिद आदि सब एक से एक नेत्ररंजक दृश्य हैं। इस नैसर्गिक विशाल वैभव के संमुख क्षुद्र मानव कितना नगण्य प्रतीत होता है।

मोटर की चालकी तेजी और चक्करदार रास्ते की वजह से बहुतों का दिमाग चकराने लगता है और उल्टी हो जाती है। मेरा जी भी मिचलाने लगा। मेरी यह पहली यात्रा थी। किन्तु दार्जिलिंग में रहने वाले लोगों की तबीयत भी मोटर से आने-जाने में खराब हो जाती है। श्री सुधांशु जी इसके पूर्व भी दार्जिलिंग जा चुके थे। लेकिन उनकी स्थिति भी दुरुस्थ न थी। ट्रेन से जाने पर यह चक्कर नहीं आता क्योंकि वह बहुत धीरे-धीरे चलती है। बीच में कर्सियाङ्ग है जो दार्जिलिंग का सब-डिवीजन हैं। वहाँ मोटर से उतर कर हम लोगों ने चाय पी। २ अगस्त को दस बजे हम लोग दार्जिलिंग पहुँच गये।

यहाँ अनेक दर्शनीय स्थान हैं। सारा शहर पहाड़ के एक ओर ऊपर से नीचे तक स्थित है। बीच-बीच में मोटर के लिए सड़कें हैं और ऊपर-नीचे आने-जाने के लिए ढालू पगडंडियाँ हैं। बाजार में अच्छी दूकानें हैं। शनिवार-रविवार को हाट लगती है जिसमें देहाती साग-सब्जियाँ तथा बहुत सी अन्य वस्तुएँ बिकने के लिए आती हैं। यात्रियों के ठहरने के लिए बड़े-बड़े होटल हैं। मोटर के अलावा सवारी के लिए रिक्शा और घोड़े मिलते हैं। यहाँ रिक्शा में एक ही व्यक्ति से कार्य नहीं चलता—तीन चार व्यक्तियों की आवश्यकता होती है।

२ अगस्त की शाम में हम लोग शहर देखने को निकले। शहर के पूर्व की ओर बंगाल के राज्यपाल का बंगला है जो एक ऊँचे टीले पर स्थित है।

किन्तु उससे भी ऊँचे स्थान पर महाकाल का मन्दिर है जिसमें हिन्दू, बौद्ध, सभी पूजा करते हैं। ३ अगस्त को भी हम लोग पूर्व की ओर घूमने निकले। ऊपर नीचे जहाँ तक संभव था, हम लोग खूब घूमे। थकने पर डेरे में आ गये। जब आकाश स्वच्छ होता है यहाँ से कंचन जंघा का दृश्य नयनाभिराम दिखता है। टाइगर हिल से एवरेस्ट चोटी का थोड़ा दृश्य कभी-कभी झलकता है। जब नभ निरभ्र होता है, सूर्योदय का दृश्य अद्भुत दिखता है जिसे देखने को दूर-दूर से यात्री आते हैं। बरसात की वजह से हम यह दृश्य न देख सके।

४ अगस्त की शाम में हिमाचल हिन्दी भवन में तुलसी-जयन्ती बड़े समारोह के साथ मनायी गयी। श्री सुधांशु जी इस अवसर के लिए ही बुलाये गये थे। उनका भाषण विद्वत्तापूर्ण था। इसके बाद मैंने अपनी कुछ रचनाएँ सुनाईं।

दार्जिलिंग के इस पहाड़ी प्रदेश में हिमाचल हिन्दी भवन एक अच्छी संस्था है। इसने नेपालियों और तिब्बतियों के बीच राष्ट्रभाषा की ध्वजा फहराने का श्रेय प्राप्त किया है। संचालकों ने एक तिमंजिला भवन बनाने का निश्चय किया है। इस संस्था की ओर से एक हिन्दी मिडिल स्कूल चलता है। परीक्षार्थियों को उत्साहित कर हिन्दी की परीक्षाएँ दिलायी जाती हैं। इस में हिन्दी का एक अच्छा पुस्तकालय है और वाचनालय भी। यहाँ हिन्दी की सभी प्रमुख पत्रिकाएँ आती हैं। इस संस्था को बिहारी, बंगाली, मारवाड़ी, नेपाली, तिब्बती आदि सब का सहयोग प्राप्त है। ऐसी संस्थाओं से सुदुर प्रदेशों में हिन्दी का ध्वज सदा ऊँचा लहराता रहेगा।

५ अगस्त को—हम लोग जाला पहाड़ छावनी देखने गये। वहाँ के रिटायर्ड सुपरिन्टेन्डेन्ट श्री महावीर राम का आग्रह था कि हम लोग उनकी संस्थाओं का निरीक्षण करें। वे अपनी ओर से एक प्राइमरी स्कूल चला रहे हैं जिस में नेपाली बच्चे और बच्चियाँ अपनी मातृ-भाषा के साथ-साथ राष्ट्र-भाषा हिन्दी भी पढ़ते हैं। सायंकाल पाँच बजे दार्जिलिंग काँग्रेस कमेटी की ओर से गाँधी चौक में एक सार्वजनिक सभा भी बुलाई गई। सुधांशु जी भाषण कर्त्ता थे। संयोगवश सभा के पूर्व ही वर्षा होने लगी। लेकिन वर्षा में भी हजारों लोग जमा हुए और छाता ताने हुए खड़े-खड़े उनका भाषण सुना। महिलाओं ने भी वर्षा की परवाह नहीं की और राष्ट्रीय ध्वज के साथ जुलूस निकाला। सात बजे से हिमांचल हिन्दी-भवन में राष्ट्रभाषा के स्वरूप पर

सुधांशु जी का भाषण हुआ। सम्पूर्ण हाल पिछले दिन की तरह खचाखच भरा था। श्रोताओं में कुछ ने राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न भी पूछे। सुधांशु जी ने उनके उत्तर दिये। प्रश्नों से ज्ञात हुआ कि राष्ट्रभाषा के प्रति उनमें वास्तविक अनुराग जागृत है। अन्त में मैंने अपनी दो तीन कविताएँ सुनायीं।

छह अगस्त को हम लोगों ने वहाँ से प्रस्थान किया। मोटर की यात्रा से जो कष्ट हुआ था उसने प्रेरित किया कि हम लोग ट्रेन से लौटें। जब तक गाड़ी नहीं खुली स्टेशन पर हजारों लोगों की भीड़ थी। गाड़ी खुलने पर 'सुधांशु जी जिन्दाबाद' हिन्दी जिन्दाबाद, राष्ट्रभाषा जिन्दाबाद, आदि नारे बुलन्द होते रहे। पथ के छह घण्टे हम लोगों ने नैसर्गिक दृश्यों के अंक में व्यतीत किये। पहाड़ से उतर कर चार बजे हम लोगों ने सिलीगुड़ी में नार्थ बंगाल एक्सप्रेस गाड़ी पकड़ी और पार्वती पुर होते हुए कटिहार पहुँचे। सुधांशु जी कटिहार से पूर्णिया चले गये और मैं बेगूसाय लौट आया।

दार्जिलिंग में आरा, छपरा और बलिया के लोग भी भरे हुए हैं। इनमें अधिक संख्या छपरा वालों की – है। वे लोग तरह-तरह के कामों में लगे हुए हैं। वर्ष में एक दो बार वे अपने घर जाते हैं। छपरे के आदमी स्यात् संसार के सभी बड़े शहरों में कहीं न कहीं मिल जायेंगे।

५ जून, १९६० ई. को दार्जिलिंग के लिए काम रूप एक्सप्रस गाड़ी से प्रस्थान किया। देहरादून से श्री दीनदयाल शर्मा दो दिनों के लिए आये थे। वे भी साथ चले। मित्रवर श्री विष्णु देव नारायण जी सपत्नीक चल रहे थे। साहबपुर कमाल में श्री राम जी प्रसाद वर्मा भी आ गये। रवीन्द्र, अरविन्द्र अभय जी और रानी पहले जा चुके थे। हम लोग नौ बजे रात में सिलीगुड़ी पहुँचे। श्री दीनदयाल शर्मा उसी गाड़ी से सीधे नलवाड़ी आसाम चले गये। हम लोगों ने रिटायरिंग रूप में विश्राम किया। दूसरे दिन सात बजे की गाड़ी से हम लोग दार्जिलिंग रवाना हुए। शर्मा की राय मोटर से चलने की थी। लेकिन मैंने पूर्वानुभव से उनको मना किया। हम लोग लगभग दो बजे दार्जिलिंग पहुँचे। अरविन्द्र, रवीन्द्र अभय जी और रानी स्टेशन पर ही मिले। उस दिन हिन्दी के अनेक अच्छे कवि वहाँ पधारे थे। मेरे सभापतित्व में एक विराट् कवि-सम्मेलन हुआ। अन्त में मैंने 'जगजीवन' (खण्ड-काव्य) का थोड़ा अंश सुनाया जिसका प्रभाव लोगों पर बहुत पड़ा और उन्होंने खूब सराहा। इसका कारण यह नहीं था कि उसमें कवित्व श्लाघ्य था प्रत्युत इसलिए कि श्री जगजीवनराम के प्रति लोगों के मन में असीम आदर और श्रद्धा का भाव था।

दार्जिलिंग में मुझे परदेश-जैसा प्रतीत नहीं होता। अक्सर भोजपुरी ही बालनी पड़ती है। जब विहार बँगाल एक थे तब दार्जिलिंग शहर भागलपुर डिवीजन का एक जिला था। १९४६ ई. में जहाँ सिलीगुड़ी रेलवे स्टेशन था, देश-विभाजन के उपरान्त वहाँ से कुछ हटा है। जगजीवन बाबू के मंत्रित्व-काल में इस स्टेशन का जीर्णोद्धार हुआ। मैंने दार्जिलिंग के साहित्य-समारोह में जो कविता पढ़ी थी उसकी चर्चा करते हुए समारोह के आयोजक शर्मा जी ने श्री जगजीवन बाबू को एक पत्र लिखा। उसका उत्तर उन्होंने यों दिया था—

नयी दिल्ली
१३-६-१९६०

प्रिय शर्मा जी,

प्रणाम। पत्र मिला। पत्र से आपकी साहित्य-प्रवृत्ति का आभास मिलता है। आप जैसे हिन्दी प्रेमी मनीषियों के प्रयत्न और प्रेरणा से ही तो प्रत्येक वर्ष दार्जिलिंग में हिन्दी को प्रोत्साहित करने का कोई न कोई समारोह मनाया जाता है। लेखक और कविजनों को दार्जिलिंग जाने आने का अवसर मिल जाता है और मातृभाषा की वेदी पर दो फूल अर्पित करने का सौभाग्य। इस लिए आप लोगों की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी। सुहृद जी विद्वान हैं, कवि हैं, भावुक हैं और हैं सुहृद। उनकी कविताएँ जहाँ-तहाँ सभा आदि में सुनने का मौका मिल जाता है। कभी-कभी पत्र—पत्रिका में देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है। उनकी कविताओं में प्रसाद और ओज दोनों हैं। साहित्य प्रतिभा उनकी चेरी है, कल्पना उनकी सहचरी है। वे चिन्तक, द्रष्टा और स्रष्टा तीनों हैं। कवि राई को पर्वत बना देता है। मेरे प्रति उनका प्रेम सखा-भाव है। इसलिए उन्होंने मुझे भी पर्वत बना दिया। वे गुण मुझ में कहाँ ? हाँ, दार्जिलिंग आऊँगा।

आपका,
जगजीवनराम

इस पत्र से यह भी ज्ञात होता है कि जगजीवन बाबू में कितना बड़प्पन है। सिलीगुड़ी से दार्जिलिंग तक छोटी लाइन जाती है। सामान किसी हिस्से में होगा और आप किसी हिस्से में। तीनो गाड़ियाँ आगे-पीछे दार्जिलिंग पहुँचती हैं। तब लोग ब्रेकवान से अपना-अपना सामान लेते हैं।

कुछ व्यक्तियों का मत है, मोटर से यात्रा में अधिक आनन्द प्राप्त होता

हैं। लेकिन मेरा मत है कि आप मोटर से जाइये और गाड़ी से लौटिये। रास्ता इतना टेढ़ा-मेढ़ा है और जगह-जगह इतने तीखे मोड़ हैं कि भय प्रतीत होता है। वाल-भर भी गाड़ी यदि इधर-उधर होगी तो आप वच न सकेंगे। लेकिन साहसिकता में एक स्वाद है। शायद इसलिए ही लोग मोटर की यात्रा में एक सुखद सनसनी का अनुभव करते हैं। समतल से सहसा दस हजार फीट ऊँचा उठा हुआ पहाड़ और उस पर घना जंगल। लगभग छह हजार फीट की ढलान पर कहीं-कहीं चाय-वागान दिखते हैं। कहीं-कहीं सीढ़ीनुमा खेत हैं जिन में जापानी ढंग से खेती होती है।

भारत सरकार ने यात्रियों के आराम के लिए हर संभव व्यवस्था की है। यहाँ हवाई जहाज से भी आप आ सकते हैं और केवल दिन भर में दार्जिलिंग के तमाम मनोरंजन दृश्यों को देखकर अथवा कैमरे की आँखों में भरकर लौट सकते हैं। यहाँ प्राकृतिक दृश्य विचित्र प्रकार के संभ्रम का भाव उत्पन्न करता है। चारों ओर पर्वतमालाएँ हैं। यहाँ से लगभग ४५ मील दूर कंचन जंघा है। अरुण की किरणें जव अस्तान्मुख सूर्य अनुराग-चूर्ण की वृष्टि करता है तो लगता है कि हजारों गुलाव की नरम पंखुड़ियाँ टूट कर विखर गयी हैं। जव सूर्य पहाड़ों की ओट में छिपता है और श्याम सन्ध्या अपना आंचल फैलाती है तो सारा वातावरण इन्द्र धनुषी वन जाता है। इन्द्र धनुषी रंग शनैः-शनै श्यामलता में घुलते हैं और दूसरी तरफ चांद झांकने लगता है। चांद का यह स्निग्ध-शीतल सौन्दर्य अप्रैल-मई में दर्शनीय होता है या अक्टूवर नवम्वर में। अन्य महीनों में दार्जिलिंग की छवि सघन कुहरों से अच्छादित होती है। कुछ दिन पूर्व यहां 'इण्डियन स्कूल आफ माउन्टेनियरिंग' की भी स्थापना हुई है। घूम यहाँ सव से ऊँची जगह है जो दार्जिलिंग से चार मील दूर है। यहाँ एक वौद्ध मठ भी है। जल पहाड़ की चढ़ाई भी आनन्दप्रद होती है। दार्जिलिंग शहर में निजी मोटर चलाना मना है लेकिन यात्रियों के लिए टैक्सी की सुविधा है।

१ मई, १९७० ई० को सुहृदनगर से दार्जिलिंग के लिए रवाना हुआ। श्री विष्णुदेव वावू के यहां गया। वहां से उनकी गाड़ी रामदयाल वावू के यहां भेज दी। उस गाड़ी से श्री महेशकुमार आ गये। जलपान के वाद हम दोनों वरौनी जंक्शन गये। वहां से आसाम मेल गाड़ी से हम लोगों ने प्रस्थान किया। पांच वजे सिड़ी पहुँचे। वहां विश्रामालय में स्नानादि से निवृत्त हुए। पंकज ने चाय-टोस्ट भेजा। मैंने केवल चाय पी। महेश ने टोस्ट खाया। पुनः हम

हम सिलीगुड़ी बाजार की ओर टहलने को गये। हम आध घण्टे में लौटकर स्टेशन आ गये।२।५।७० की सुबह में छह बजे दार्जिलिंग वाली गाड़ी में चढ़ने के लिये गये। वह गाड़ी नया जलपाई गोडी से आती है। मानिकबाबू उसी गाड़ी से आये और हम लोगों के लिये सुरक्षित स्थान बना दिये। हम लोग बैठे। मानिक बाबू को चाय-टोस्ट खिलाया। गाड़ी खुली महेश को सब-कुछ बताते हुये चले। गाड़ी अपनी धीमी चाल से चली। रास्ते में बहुत मित्र मिले जो चाय-टोस्ट से हमारा सम्मान करते थे। घूम से दो स्टेशन पिछे थे कि जाड़ा लगने लगा। महेश ने अपना स्वेटर निकाला और मेरे लिये ऊनी चादर एक बजे हम दार्जिलिंग पहुँचे। कपड़े बदले लाल बाबू के मकान में जाकर ठहरे। शाम में माल पर गये। वहाँ आचार्य भानुभक्त की प्रतिमा को प्रणाम किया वहाँ बहुत देर तक ठहरे। भानुभक्त ने पाली भाषा में रामायण लिखी है। इनका जन्म संवत १८७१ और देहान्त संवत १९२५ है। २।५।७० को खूब वर्षा हुई। हिमांचल हिन्दी भवन में गये। वहाँ से वशिष्ठ बाबू के यहाँ गये। वहाँ से जाला पहाड़ पर गये। विश्वनाथ बाबू के यहाँ चाय आदि की व्यवस्था हुई। आठ बजे के बाद हम वहाँ से लौटे। महेश की वजह से ऊँचे पहाड़ पर चढ़ने-उतरने में पर्याप्त सहायता मिली है।

३।५।७० को हम रमाशंकर बाबू के यहाँ गये। वहाँ दो-तीन घण्टे तक बैठे। चाय-जलपान का दौर चला। उन्होंने अपने यहाँ ठहरने को खूब आग्रह किया। लेकिन मैंने उन्हें अपनी असमर्थता बतायी। वहाँ से हम चले तो लाल बाबू मिले। उन्होंने माल पर महेश का एक फोटो खींचा। ४।५।७० की सुबह में हम बोटानिकल गार्डन में गये। वहाँ जो दृश्य था उससे मन नहीं अघाया, हालांकि घण्टों उसे देखा। महेश को अनेक वस्तुएं दिखायीं। एक बजे तक हम घूमे। थकने पर हम डेरे में लौटे। ५।५।७० को भी दिन भर हम घूमते रहे और मित्रों से मिलते रहे। मेरी थकावट देख कर महेश द्रवित हो उठा। जब मैं सोने लगा तब उसने कहा—'बाबा' आप बहुत थक गये हैं। आपके पैर दबाता हूँ, मैंने कहा—'नहीं' तुम आराम करो।' उसके मन में अपने पन और दया का भाव था। रात में रमाशंकर बाबू के यहाँ हम भोजन करने को गये। वहाँ से हम दस बजे रात में लौटे। ६।५।७० को सबसे हम मिले और रात में स्टेशन पर ठहरे। सुबह में सात बजे की गाड़ी से सिलीगुड़ी के लिये प्रस्थान किया। हम एक बजे सिलीगुड़ी पहुँचे। रात में वहाँ ठहर गये। ७।५।७० को ४ अप गाड़ी से बेगूसराय के लिए प्रस्थान किया। हम नौ बजे बेगूसराय पहुँचे। महेश घर गया और मैं सुहृदनगर गया।

१९४६ ई० में जितनी वस्तुएँ देखी थीं उन्हें चौवीस वर्षों के वाद देखने का अवसर मिला। पुरानी स्मृतियाँ ताजा हो गयीं इसका सारा श्रेय है श्री महेश कुमार को। यदि वह मेरे साथ में नही होता तो सब वस्तुओं को पुनः देखने को मैं नहीं जाता। यह सौभाग्य फिर कव मिलेगा, ईश्वर जाने। जब मैं सुहृदनगर आया श्री रवीन्द्र नारायण जी और श्री अरविन्द कुमार" अरविन्द ने कहा कि दिल्ली श्री प्रेमनाथ शर्मा आपको खोजने आए थे फिर वे दार्जिलिंग चले गये हैं—लेकिन ईश्वर की कृपा आज वे भी दार्जिलिंग से आ गए और मैं भी उनके इन्तजारी में सुहृदनगर में डटा रहा। दोनों आदमी वहाँ के प्राकृतिक दृश्य का वरावर चर्चा करते रहे। धन्य है ईश्वर की माया, कहीं धूप कहीं छाया।

समस्त सुहृद साहित्य की सूची

काव्य

१. विजय (खण्ड-काव्य)	३.५०
२. विहार विभूति (खण्ड-काव्य)	१२.००
३. जगजीवन (खण्ड-काव्य)	२.५०
४. प्रेम-मिलन (खण्ड-काव्य)	२.५०
५. वेगूसराय गोलीकाण्ड (खण्ड-काव्य)	२.५०
६. विश्व वीणा (कवितायें)	२.५०
७. प्रेम-प्रलाप (कवितायें)	३.००
८. निर्झरिणी (कविताएँ)	२.५०
९. वन्दी (कवितायें)	४.५८
१०. रजनी (कवितायें)	३.६२

गद्य

११. डॉ० अनुग्रहनारायण सिंह (जीवनी)	१२.००
१२. जगजीवनराम (जीवनी)	२.५०
१३. बीती बातें (आत्मकथा)	१५.००
१४. मेरे अपने (संस्मरणात्मक जीवन)	६.००
१५. प्रेम निकुंज (गद्य काव्य)	
१६. व्यक्ति और व्यक्तित्व (संस्मरणात्मक जीवनी)	८.००
१७. संचयिता (कविता)	१२.५०
१८. भारत नेपाल (सचित्र)	१२.००
१९. बादल (कहानी)	प्रेस में
२०. बड़ों की जीवनी (संस्मरण)	प्रेस में